

# नामावर

अपनी उनकी सबकी बात

नवंबर 2018

नई दिल्ली

तोपों की गड़गड़ाहट के बीच रोटियाँ सेंकने वाला क्रांतिकारी  
दसवीं बरसी पर वी.पी. सिंह को कैसे याद करें  
किसान मुक्ति यात्रा पर पी. साइनाथ से बातचीत  
व्यंग्य: मज़बूत सरकार

सबरीमाला: उदारपंथ का पाखंड  
असली जंग दशहरे के बाद होगी  
पत्रकारों पर हमले के खिलाफ सम्मेलन  
विष्णु खरे की कुछ कविताएं

कांग्रेस के नेता और वरिष्ठ अधिवक्ता कपिल सिब्बल की नई पुस्तक 'शेड्स ऑफ ग्रे' के कुछ चुनिंदा अंश



## आपकी बात

### विष्णु खरे की कुछ कविताएँ

पिछले दिनों हिंदी के बड़े कवि विष्णु खरे नहीं रहे। लंबी बीमारी के बाद दिल्ली के एक अस्पताल में उनका निधन हो गया। वे दिल्ली की हिंदी अकादमी के उपाध्यक्ष थे और कुछ ही दिनों पहले यह पदभार ग्रहण करने बंबई से राजधानी आए थे। विष्णु खरे का कविता जीवन कोई छह दशक तक फैला हुआ है और उनकी कविताओं के विविध रंग हैं। विष्णु खरे के भाषा सौष्ठव और शिल्प ने हिंदी कविता में एक नई धारा का सूत्रपात किया था और कई कवियों ने अस्सी के दशक में कविता की स्थापित संरचना में तोड़फोड़ करने की कोशिश की थी। प्रस्तुत है विष्णु खरे की तीन कविताएँ।

#### फ़ासला

(वर्णित मढ़ा-हुआ फ़ोटो मित्र-पत्रकार कुलदीप कुमार के 'पायनियर' कैबिन में लगा रहता था। यह उसके अज्ञात फ़ोटोग्राफ़र को समर्पित)

थोड़ा झुका हुआ देहाती लगता एक पैदल आदमी  
अपने बाएँ कंधे पर एक झूलती-सी हुई वैसी ही औरत को ढोता हुआ  
जो एक हाथ से उसकी गर्दन का सहारा लिए हुए है  
जिसके बाएँ पैर पर पंजे से लेकर घुटने तक पलस्तर  
दोनों के बदन पर फ़क़त एकदम ज़रूरी कपड़े  
अलबत्ता दोनों नंगे पाँव  
उनकी दिखती हुई पीठों से अंदाज़ होता है  
कि चेहरे भी अर्धे और सादा रहे होंगे

दिल्ली के किसी चौंधियाते दिन में ली गई स्याह-सुफ़ैद तस्वीर थी वह  
शायद 4.5 या सुपर 1200 एमएम टेलीलेंस वाले  
किसी कैमन ए ई 1 या निकोर एफ़ 801 से खींची गई -  
फोटोग्राफ़र ने खुद को मोहनसिंह प्लेस या खड़कसिंह मार्ग के  
एम्पोरिअमों के सामने कहीं स्थित किया होगा

यह मान लेने में कोई हर्ज़ नहीं कि ले जाई जा रही औरत  
ढोने वाले आदमी की ब्याहता ही रही होगी  
लेकिन दूर-दूर तक दोनों के साथ और कोई (आखिर क्यों) नहीं

सड़क के बाएँ से उन्हीं की दिशा में जाता हुआ  
एक ख़ाली ऑटो वाला कुछ उम्मीद से यह मंज़र देखता है  
दाई ओर के एंबेसेडर और मारुति के ड्राइवर हैरत और कुतूहल से -  
उन दोनों के अलावा सड़क पर और कोई पैदल नहीं है

जिससे धूप और वक्रत का अंदाज़ा होता है

यह लोग जंतर-मंतर नहीं जा रहे  
 आगे चल कर यह राह विलिंग्डन अस्पताल पहुँचेगी  
 जहाँ शायद इन्हें पलस्तर कटवाना है  
 या क्या मालूम पाँव और बिगड़ गया हो  
 ऐसे लोगों के साथ पचास रोजे लगे रहते हैं  
 एक तो यही दिखता है कि इनके पास कोई सवारी करने तक के पैसे नहीं हैं  
 या आदमी इस तरह आठ-दस रुपये बचा रहा है  
 जिसमें दोनों की रज़ामंदी दिखती है  
 इनकी दुनिया में कहीं भी कैसा भी बोझ उठाने में शर्मिंदगी नहीं होती  
 यह तो आखिर घरवाली रही होगी

वह सती शव नहीं थी अपंग थी  
 यह एकाकी शिव जिसे उठाए हुए अच्छी करने ले जा रहा था  
 किसी का यज्ञ-विध्वंस करने नहीं

किस तरह की बातें करते हुए यह रास्ता काट रहे थे  
 या एकदम चुप्पी में क्या-क्या सोचते हुए  
 शायद किसी पेड़ का सहारा लेकर सुस्ताए हों  
 क्या रास्ते के इक्का-दुक्का लोगों ने इसे माँगने का एक नया तरीका समझा  
 फिर भी अगर किसी ने कुछ दिया तो इनने लिया या नहीं  
 अस्पताल पहुँचे या नहीं  
 पहुँचे तो वहाँ क्या बीती

शायद उसने कहा हो  
 कब तक ले जाते रहोगे  
 यहीं कहीं पटक दो मेरे को और लौट जाओ  
 उसने जवाब दिया हो  
 चबर चबर मत कर लटकी रह

खड़कसिंह से विलिंग्डन बहुत दूर नहीं  
 लेकिन एक आदमी एक औरत को उठाए हुए  
 कितनी देर में वहाँ पहुँच सकता है  
 यह कहीं दर्ज नहीं है

मुझे अभी तक दिख रहा है  
 कि वह दोनों अब भी कहीं रास्ते में ही हैं  
 गाड़ियों में जाते हुए लोग उन्हें देख तो रहे हैं

लेकिन कोई उनसे रुक कर पूछता तक नहीं  
बैठाल कर पहुँचाने की बात तो युगों दूर है

### डरो

कहो तो डरो कि हाय यह क्यों कह दिया  
न कहो तो डरो कि पूछेंगे चुप क्यों हो

सुनो तो डरो कि अपना कान क्यों दिया  
न सुनो तो डरो कि सुनना लाजिमी तो नहीं था

देखो तो डरो कि एक दिन तुम पर भी यह न हो  
न देखो तो डरो कि गवाही में बयान क्या दोगे

सोचो तो डरो कि वह चेहरे पर न झलक आया हो  
न सोचो तो डरो कि सोचने को कुछ दे न दें

पढ़ो तो डरो कि पीछे से झाँकने वाला कौन है  
न पढ़ो तो डरो कि तलाशेंगे क्या पढ़ते हो

लिखो तो डरो कि उसके कई मतलब लग सकते हैं  
न लिखो तो डरो कि नई इबारत सिखाई जाएगी

डरो तो डरो कि कहेंगे डर किस बात का है  
न डरो तो डरो कि हुक्म होगा कि डर

### चुनौती

इस कस्बानुमा शहर की इस सड़क पर  
सुबह घूमने जाने वाले मध्यवर्गीय सवर्ण पुरुषों में  
हरिओम पुकारने की प्रथा है

यदि यह लगभग स्वगत  
और भगवान का नाम लेने की एकान्त विनम्रता से ही कहा जाता  
तब भी एक बात थी  
क्योंकि तब ऐसे घूमने वाले  
जो सुबह हरिओम नहीं कहना चाहते  
शान्ति से अपने रास्ते पर जा रहे होते

लेकिन ये हरिओम पुकारने वाले

उसे ऐसी आवाज़ में कहते हैं  
 जैसे कहीं कोई हादसा वारदात या हमला हो गया हो  
 उसमें एक भय, एक हौल पैदा करने वाली चुनौती रहती है  
 दूसरों को देख वे उसे अतिरिक्त ज़ोर से उच्चारते हैं  
 उन्हें इस तरह जाँचते हैं कि उसका उसी तरह उत्तर नहीं दोगे  
 तो विरोधी अश्रद्धालु नास्तिक और राष्ट्रद्रोही तक समझे जाओगे  
 इस तरह बाध्य किए जाने पर  
 अक्सर लोग अस्फुट स्वर में या उन्हीं की तरह ज़ोर से  
 हरिओम कह देते हैं  
 शायद मज़ाक़ में भी ऐसा कह देते हों

हरिओम कहलवाने वाले उसे एक ऐसे स्वर में कहते हैं  
 जो पहचाना-सा लगता है

एक सुबह उठकर  
 कोठी जाने वाले इस ज़िला मुख्यालय मार्ग पर  
 मैं प्रयोग करना चाहता हूँ  
 कि हरिओम के प्रत्युत्तर में सुपरिचित जैहिन्द कहूँ  
 या महात्मा गाँधी की जय या नेहरू ज़िन्दाबाद  
 या जय भीम अथवा लेनिन अमर रहें  
 — कोई इनमें से जानता भी होगा भीम या लेनिन को? —  
 या अपने इस उकसावे को उसके चरम पर ले जाकर  
 अस्सलाम अलैकुम या अल्लाहु अकबर बोल दूँ  
 तो क्या सहास मतभेद से लेकर  
 दँगे तक की कोई स्थिति पैदा हो जाएगी इतनी सुबह  
 कि इतने में किसी सुदूर मस्जिद का लाउडस्पीकर कुछ खरखराता है  
 और शुरु होती है फ़ज़ की अज़ान  
 और मैं कुछ चौंक कर पहचानता हूँ  
 कि यह जो मध्यवर्गीय सवर्ण हरिओम बोला जाता है  
 वह नमाज़ के वज़न पर है बरक्स

शायद यह सिद्ध करने का अभ्यास हो रहा है  
 कि मुसलमानों से कहीं पहले उठता है हिन्दू ब्राह्म मुहूर्त के आसपास  
 फिर वह जो हरिओम पुकारता है उसी के स्वर अज़ान में छिपे हुए हैं  
 जैसे मस्जिद के नीचे मन्दिर  
 जैसे काबे के नीचे शिवलिंग

गूँजती है अज़ान

दो-तीन और मस्जिदों के अदृश्य लाउडस्पीकर  
 उसे एक लहराती हुई प्रतिध्वनि बना देते हैं  
 मुल्क में कहाँ-कहाँ पढ़ी जा रही होगी नमाज़ इस वक़्त  
 कितने लाख कितने करोड़ जानू झुके होंगे सिजदे में  
 कितने हाथ माँग रहे होंगे दुआ कितने मूक दिलों में उठ रही होगी सदा  
 अल्लाह के अकबर होने की लेकिन  
 क्या हर गाँव-कस्बे-शहर में उसके मुकाबिले इतने कम उत्साहियों द्वारा  
 हरिओम जैसा कुछ गुँजाया जाता होगा

सन्नाटा छा जाता है कुछ देर के लिए कोठी रोड पर अज़ान के बाद  
 होशियार जानवर हैं कुत्ते वे उस पर नहीं भौंकते  
 फिर जो हरिओम के नारे लगते हैं छिटपुट  
 उनमें और ज़्यादा कोशिश रहती है मुअज़्ज़िनों जैसी  
 लेकिन उसमें एक होड़, एक खीझ, एक हताशा-सी लगती है  
 जो एक ज़बरदस्ती की ज़िद्दी अस्वाभाविक पावनतावादी चेष्टा को  
 एक समान सामूहिक जीवन्त आस्था से बाँटती है  
 वैसे भी अब सूरज चढ़ आया है और उनके लौटने का वक़्त है

लेकिन अभी से ही उनमें जो रंजीदगी और थकान सुनता हूँ  
 उस से डर पैदा होता है  
 कि कहीं वे हरिओम कहने को अनिवार्य न बनवा डालें इस सड़क पर  
 और फिर इस शहर में  
 और अन्त में इस मुल्क में

## मजबूत सरकार-1

विभांशु केशव

क्या भाजपा अपने सहयोगी दलों की सहायता से सरकार चला रही है? मुझे नहीं लगता! रामविलास पासवान जैसे मौसम वैज्ञानिक, चंद्रबाबू नायडू के विशेष राज्य, ओम प्रकाश राजभर के मुर्गा-दारू पक्का वोट, नितीश कुमार की अंतरात्मा और शिवसेना का सामना करने के लिए भाजपा ने गठबंधन के पहले ही अपने वफादार सहयोगी चुन लिए थे। उन्हीं सहयोगियों की सहायता से भाजपा सरकार चल रही है। गठबंधन के सहयोगियों पर भाजपा को विश्वास नहीं है। वे अविश्वास प्रस्ताव के दौरान साथ छोड़ सकते हैं।

भाजपा, उसके आनुषंगिक संगठनों और समर्थकों की सरकार चार वाक्य चला रहे हैं। वे चारो वाक्य इतनी बार बोले गए हैं कि तकिया कलाम बन गए हैं। 'बोले गए हैं' और 'तकिया कलाम' कहने से भाजपा की आस्था को ठेस लग सकती है। भूल सुधार किया जाए- इतनी बार जपे गए हैं कि भगवान बन गए हैं। 'जै श्रीराम' पीछे छूट गए, भगवान कोई और बन गया!

चार वाक्यों के अतिरिक्त भी भाजपा के कई भगवान हैं। कांग्रेस के कर्म सत्तारूढ़ होने के बाद से ही भाजपा के भगवान बने हुए हैं। लालू यादव के जेल चले जाने के बाद जवाहर लाल नेहरू भगवान बने हुए हैं। चारा घोटाले के सजायाफ्ता लालू यादव भी भगवान थे। जेल जाने के बाद भी 'आवश्यकतानुसार' हैं। विडम्बना है, भ्रष्टाचार मिटाने आई भाजपा का भगवान एक सजायाफ्ता! लालू यादव भाजपा के भगवान क्यों हैं?

बिहार विधानसभा चुनाव-2015 के दौरान लालू यादव ने कहा- वे भाजपा वालों के भगवान हैं। भाजपाई सुबह-शाम उनका नाम लेते हैं। लालू यादव से चूक हो गई। लालू यादव भाजपा के मुख्य भगवान नहीं हैं। वे सहायक भगवान हैं। संघ के हिंदुत्व और भाजपा के राष्ट्रवाद के मुख्य भगवान मुसलमान हैं! हिंदुत्ववादी और राष्ट्रवादी सुबह-शाम ही नहीं, चौबीस घंटे में कई बार मुसलमानों का नाम लेते हैं। ब्रेकफास्ट, लंच और डिनर भी मुसलमानों का नाम लेकर करते हैं। ब्रेकफास्ट, लंच और डिनर में मुसलमानों को खाते भी हैं- आज चबा-चबा कर खत्म कर दूँगा इनको। चबाकर खत्म करने के चक्कर में अधिक खा लेते हैं। पेट में गैस बनने लगती है। पेट की गैस का असर दिमाग पर होता है, तो अंट-शंट बोलने लगते हैं।

मजबूत सरकार की मजबूरी है, जो मुसलमानों को भगवान बनाना पड़ा। सीबीआई के साथ अन्य जाँच एजेंसियाँ भी भगवान की भूमिका निभा रही हैं- प्रभु! भ्रष्टाचार पर जीरो टॉलरेंस की लाज आप ही रख सकते हैं। अमुक के घर छापे के रूप में अवतार लीजिए। छापे के दौरान भले ही कुछ न मिले, हम

आपकी लाज बचा लेंगे। प्रभु! आतंकवाद पर जीरो टॉलरेंस की लाज बचा लीजिए। अमुक के घर जाँच के रूप में अवतार लीजिए। उसने प्रेम विवाह नहीं, लव जेहाद किया है। आपकी लाज हम बचा लेंगे। सभी भगवान मिलकर भाजपा सरकार की गाड़ी को चला रहे हैं। उन्होंने नरेंद्र मोदी के रूप में गद्दी पर अपनी खडाऊँ रख दी है।

मजबूत सरकार को राज्यसभा में अपनी मजबूती दिखाने के लिए भाजपा को नरेश अग्रवाल को भी गले लगाना पड़ा। जिन्होंने राज्यसभा में व्हिस्की, रम, जिन और ठर्रे का स्मरण किया था। स्मरण के बाद राज्यसभा में अरुण जेटली और बाहर मंत्रियों, सांसदों और प्रवक्ताओं ने नरेश अग्रवाल पर राष्ट्रद्रोही, हिंदुत्व विरोधी, पाकिस्तानी होने की गर्जना की बौछार कर दी। आरएसएस के एक 'विचारक' ने एनआईए और राँ से उन्हें देशद्रोही साबित करने को कह दिया था। राज्यसभा में मजबूती के लिए नरेश अग्रवाल को गले लगाने के बाद उनकी गर्जना का रंग बदल गया।

केंद्रीय मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री सत्यपाल सिंह ने कहा था- डार्विन गलत थे। किसी ने बंदर को इंसान में बदलते नहीं देखा था। राज्यमंत्री का कहना सही था, क्योंकि रामायण धारावाहिक में हनुमान ने कभी आदम का रूप नहीं धरा था। बंदर को इंसान में बदलते भले ही किसी ने न देखा हो, पर मैंने देखा है- आदमी को गिरगिट में बदलते हुए। फिराक गोरखपुरी की तर्ज पर- आने वाली नस्लें तुम पर फ़ख़ करेगी हम-असरों, जब भी उनको ध्यान आएगा तुमने आदमी को गिरगिट बनते देखा है।

मजबूत सरकार चार वाक्यों के पाए पर टिकी है: 1- ये जनादेश का अपमान है। 2- साठ वर्ष में कुछ नहीं हुआ। 3- ये राष्ट्रद्रोह है। 4- पाकिस्तान चले जाओ। ये चारों वाक्य बहुत बोलते हैं। इनको सुनते-सुनते ऐसा लगने लगा है कि ये चारो वाक्य नहीं, प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री, पार्टी अध्यक्ष और मंत्री या सांसद हैं। ये चारों जब गर्जना करते हैं, तब विपक्ष की बोलती बंद हो जाती है।

राज्यसभा में ईवीएम की विश्वसनीयता पर विपक्ष द्वारा उठाये गए सवालों का जवाब देते हुए मुख्तार अब्बास नकवी ने कहा- ये जनादेश का अपमान है। विपक्ष की घिग्घी बँध गई। गनीमत है, मुख्तार अब्बास नकवी ने ये नहीं कहा कि ये राष्ट्रद्रोह है। मुख्तार अब्बास नकवी का कहना पूरी तरह जायज है, क्योंकि न्यू इंडिया छाप भाजपा के लोकतंत्र में सवाल पूछना जनादेश का अपमान है। सवाल पूछने से जिनका अपमान होता है, वो अपने अपमान का बदला देश भर में विभिन्न तरीकों से ले रहे हैं।

एक एक्सप्रेस ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हुई। जाँच के बाद उसमें आतंकवादियों का हाथ पाया गया। उसके बाद जितनी भी रेल दुर्घटनाएँ हो रही हैं, सभी में आतंकियों का हाथ होने की सम्भावना जताई जा रही है।

रेल दुर्घटना के बाद विपक्ष याद दिला रहा होता है- अमुक दुर्घटना के बाद अमुक रेल मंत्री ने इस्तीफा दे दिया था। तब तक खबर प्रसारित होने लगती है, प्राइम टाइम में विमर्श होने लगता है- रेल दुर्घटना के पीछे आतंकवादियों का हाथ हो सकता है। जाँच एटीएस को सौंप दी गई है। आतंकवादियों का हाथ हो सकता है... तो विपक्ष इस्तीफे की याद दिलाना बंद कर देता है। एटीएस जाँच करती है। बताती है, इस



रेल दुर्घटना में आतंकवादियों का हाथ नहीं है। ये खबर प्राइम टाइम में विमर्श का विषय नहीं बनती। एक कॉलम के रूप में किसी कोने में फिलर के रूप में पड़ी होती है।

इस्तीफे की याद दिलाने वाला विपक्ष सरकार से ये नहीं पूछ पाता- प्रचंड बहुमत की मजबूत सरकार इतनी कमजोर है कि आतंकी दिल्ली, मुम्बई, कश्मीर छोड़ देश भर में फैली रेलवे लाइंस पर चहलकदमी करने लगे हैं? कैसे पूछे, राष्ट्रवाद और हिंदुत्व के बहुमत के अनुसार आतंकी अर्थात् मुसलमान। मुसलमान अर्थात् पाकिस्तानी। विपक्ष ने अगर सवाल पूछा, तो 'तुम राष्ट्रदोही हो' और 'पाकिस्तान चले जाओ' अपनी गर्जना से विपक्ष की बोलती बंद करा देंगे।

एक के बाद एक रेल दुर्घटनाओं का सिलसिला थमने के बाद एक के बाद एक ट्रेनों की लेट-लतीफी शुरू हुई। सूचनाओं के अनुसार लगभग सत्तर प्रतिशत ट्रेनें देर से चल रही हैं। लेट-लतीफी के बचाव में अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विपक्ष की घिग्घी बाँध देने वाला जवाब भाजपा प्रवक्ताओं के पास है-

विपक्ष का प्रश्न- ठंडी में ट्रेन लेट होती है तो कोहरा कारण होता है। गर्मी में ट्रेन लेट होने का क्या कारण है?

सत्ता पक्ष के प्रवक्ता का जवाब (अवैज्ञानिकता को बढ़ावा देने का भी)- गर्मी के कारण धातुओं में फैलाव होता है। फैलाव गोपनीय होता है, जिसे विपक्ष की आँख नहीं देख सकती। रेल की पटरी लौह धातु की बनी होती है। लौह धातु भी गर्मी के कारण फैलती है जिससे रेल मार्ग से बनारस से नई दिल्ली के बीच की न्यूनतम दूरी 755 किलोमीटर में भी फैलाव होता है। लौह धातु की रेल पटरी में फैलाव के कारण बनारस से दिल्ली के बीच की न्यूनतम दूरी हजार किलोमीटर से अधिक हो जाती है। दूरी तीन-चार सौ किलोमीटर बढ़ जाने से ही ट्रेन गर्मी में भी लेट हो रही है। लम्बी दूरी तय करने में वक्त तो लगता ही है।

विपक्ष- अवाक। सिट्टी-पिट्टी गुम। घिग्घी बाँध गई।

देश, शब्दों के आतंकियों के हमले की चपेट में है। मजबूत सरकार अपनी जीरो टॉलरेंस की नीति अपनाकर उनके खात्मे की कार्रवाई कर रही है- अस्सी प्रतिशत गौरक्षक गोरखधंधे में लिप्त है। मुझे मार लो लेकिन मेरे दलित भाइयों को मत मारो।

प्रचंड बहुमत की ऐसी सरकार पहली बार देख रहा हूँ, जिसे किसी भी ऐरे-गैरे को अपना भगवान बनाना पड़ रहा है। ऐसी मजबूत सरकार जो पार्टी को चंदा देने वाले छुटभैयों के आगे लाचार है। क्या ये मजबूत सरकार है? मुझे नहीं लगता। मुझे तो ये स्वेटर सरकार लगती है।

सही जगह से एक धागा पकड़कर खींचने से पूरा स्वेटर उधड़ जाता है। प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल, पार्टी अध्यक्ष, मीडिया समर्थक पिछले चार वर्ष से स्वेटर की फिर-फिर-फिर बुनाई करने में व्यस्त हैं। गर्मी,

बारिश में काम चल जाएगा। अगर कहीं स्वेटर की बुनाई पूरी होने के पहले विकास आ गया तो ठंड में कैसे बचेगा? ये गरीबों का विकास नहीं है, जो किटकिटाती ठंड में भी बिना स्वेटर पुक्की मार 'सर्वाइव' कर जाता है। सरकार अब तक स्वेटर नहीं बुन पाई, इसलिए कई विकास नाराज हो गए। स्वेटर पहनने दूसरे देश चले गए। इधर सरकार कहती है- हम उन्हें वापस लाएंगे। उधर से वे कहते हैं- पहले स्वेटर बुन लो। फिर हम आएंगे। वादे के अनुसार 2022 तक उनके लिए स्वेटर बुन लिया जाएगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भी एक वादा है। वादा है या जुमला, फिर भी- तेरे वादे पे ऐतबार किया।

संघ का वादा है- 2025 तक हिंदू राष्ट्र। ये वादा पूरा होने के बाद संसद का दृश्य बड़ा मनोरम होगा। अभी संसद और विधानसभाओं में बैठने वाले पूँजीपतियों के मैनेजर नेता कट पहनते हैं। डिजायनर कपड़े पहनते हैं। हिंदू राष्ट्र का सपना पूरा होने के बाद मैनेजरों को पहनावा बदल जाएगा। वे अपने असली रूप में आ जाएंगे। पेन की जगह लाठी रखेंगे। कड़्यों ने अभ्यास भी शुरू कर दिया है।

जनादेश का अपमान करने वाली भीड़ हिंसक शक्ति प्रदर्शनों के माध्यम से कितना भी अपनी मजबूती का प्रदर्शन कर ले, संघ प्रत्यक्ष रूप से हिंदू राष्ट्र का निर्माण सद्भावना से करना चाहता है। सद्भावना का निर्माण करने के लिए संघ का आनुषंगिक संगठन मुस्लिम राष्ट्रीय मंच 'मेकिंग सद्भावना बिटवीन हिंदू एंड मुस्लिम' अभियान चला रहा है। ये अभियान 'मेक इन इंडिया' के तहत बनाया गया है। नतीजे मन-मुताबिक आए तो सबसे अधिक मुनाफा भी देगा। जैसे एक लीटर मिनरल वाटर या कोल्ड ड्रिंक बनाने के लिए सैकड़ों लीटर पानी को जहर में बदलने वाले पूँजीपति 'सेव दी वाटर' कैम्पेन पर करोड़ों रुपये खर्च करते हैं। इस सद्भावना के सहारे जहर फैला कर भी अरबों रुपये कमा लेते हैं।

में भी सुबह-शाम मजबूत सरकार का नाम लेता हूँ। इस तरह वो मेरी भगवान हुई। फिर भी, पता नहीं क्यों संघ और भाजपा वाले मुझे अपना विरोधी समझते हैं?

## मज़बूत सरकार-2

केंद्र के बाद उत्तर प्रदेश में भी प्रचंड बहुमत के साथ भाजपा की सरकार ने पद भार ग्रहण किया। मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण करने के बाद आदित्यनाथ ने कहा- वे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की योजनाओं को आगे बढ़ाएंगे। वादे के अनुसार सहारनपुर से गोरखपुर तक आगे बढ़ा भी रहे हैं। क्या यही वादा था नरेंद्र मोदी का?

केंद्र सरकार के नक्शे-कदम पर चलने के आदित्यनाथ के वादे के आधार पर मेरा अनुमान था कि यूपी पुलिस भी उसी रास्ते पर चलेगी। केंद्र से लेकर प्रदेश तक 'जनादेश का अपमान' देख पुलिस को आराम ही आराम होगा। सभी रेल दुर्घटनाओं में आतंकियों का हाथ होने की सम्भावना देख, पुलिस बड़े मजे में रहेगी। वे स्थानीय मीडियाकर्मी जो समय-समय पर जिला या थाना क्षेत्र में हुई बलात्कार, हत्या, लूट, छिनैती आदि की घटनाओं का फालोअप देते रहते हैं, उन मीडियाकर्मियों की घिग्घी बाँधने के लिए पुलिस भी जनादेश के अपमान का प्रयोग कर सकती है। थाना क्षेत्र में छिनैती की घटना हुई, तब पुलिस बताएगी- इस छिनैती में आतंकवादियों का हाथ हो सकता है। इसकी सूचना एटीएस को दे दी गई है। एटीएस की जाँच के बाद ही कुछ बताया जा सकता है। कानून-व्यवस्था दुरुस्त करने के दबाव में अगर मुख्यमंत्री, डीजीपी से प्रश्न पूछेंगे, तब डीजीपी कह देंगे- ये जनादेश का अपमान है। डीजीपी का जवाब सुन मुख्यमंत्री की घिग्घी बँध जाएगी।

ऐसे सभी अनुमानों को आदित्यनाथ ने ध्वस्त कर दिया। मुख्यमंत्री आदित्यनाथ ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की योजनाओं को आगे बढ़ाने की बात कही थी। इस अनुसार मुझे लगा आदित्यनाथ भी विपक्ष की घिग्घी बाँधने के लिए केंद्र के चार वाक्यों का सहारा लेंगे। वे चारों वाक्य प्रदेश की भाजपा सरकार भी चलाएंगे। पर आदित्यनाथ की कार्यप्रणाली ने मुझे गलत साबित कर दिया। आदित्यनाथ की भाजपा सरकार ने 'सरकार बदल गई है' को अपना तकिया कलाम बनाया। इस संकटमोचक वाक्य का जाप सुन विपक्ष के साथ प्रदेश की घिग्घी बँधी हुई है- पता नहीं कब आदित्यनाथ ठोक दें। अपराध के ग्राफ का होंसला बुलंद है। अपनी कार्यप्रणाली सबसे अलग दिखाने के लिए तकिया बदल दिया है, पर शायद मनबद्धों और अपराधियों को 'सरकार बदल गई है' के प्रकोप से बचाने वाली केंद्रीय जीरो टॉलरेंस नीति आदित्यनाथ ने बता दी है। गाँव-देहात, कस्बा-मोहल्ला में जीरो टॉलरेंस नीति प्राचीन काल से चली आ रही है। मैं भी इसका प्रयोग करता हूँ।

गोवा के मुख्यमंत्री के रूप में मनोहर पर्रिकर ने कहा- गोवा में बीफ की कमी नहीं होने दूँगा। गाय को माता मानने वाले दल के एक सिपाही का ये बयान फैला, तब गाँव में औरतों के बीच भी चर्चा शुरू हुई- ई कुल दू मूँहे वाला हउवन का। कब्भो राम के नाम वोट लेलन, कब्भो गंगा अ कब्भो गाय के नाम पर। औरतों के बीच एक नइकी भउजी भी थी। वो समझाने लगी- बीफ का अर्थ सिर्फ गाय का माँस नहीं होता

हैं। भउजी सही जानकारी दे रही थी। मैंने पूछा- कब से भउजी? भउजी ने फिर सही जानकारी दी- मनोहर पर्रीकर के बयान के बाद से।

मनोहर पर्रीकर द्वारा बीफ पर दिये गए बयान से विश्व हिंदू परिषद नाराज हुआ। उसने मनोहर पर्रीकर के इस्तीफे की माँग की। विहिप की माँग सुन बाऊ बहुत हँसे। काहें? बतावत हई।

मनोहर पर्रीकर का बयान सुन बीफ खाने वाले खुश। विश्व हिंदू परिषद की माँग सुन हिंदुत्व के सिपाही खुश। (खुश से सरलीकरण का खतरा है। सही शब्द तुष्टिकरण है।) 'दोनों' को खुश करने की नूरा कुशती गाँव में अक्सर होती है। मान लीजिए मनबढ़ई में मैंने किसी को गरिया दिया। ओरहन मेरे घर आया। ओरहन देने वाले के सामने बाऊ मुझे गरिया दिए। ओरहन देवे वाला खुश- सारे के गारी पड़ल। डॉट-डपट सुन बाऊ से नाराज हो जाऊँ, उसके पहले ही वे टुई से आँख मार दिए। मैं समझ गया- बाऊ राजनीति खेल गए। बाऊ के प्रति मेरी सम्भावित नाराजगी असम्भव हो गई।

विकास की बाढ़ में आई उन्माद और हिंसा की लहर को जब जिंदगियाँ लीलने की लत पड़ गई, तब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा- अस्सी प्रतिशत गौरक्षक, गोरखधंधे में लिप्त हैं। इन पर रोक लगनी चाहिए। मुझे मार लो, मेरे दलित भाइयों को मत मारो।

एक बार फिर मान लीजिए, मैंने जिसको गरियाया था, किसी दिन उसी से बात बढ़ गई। हूरा-फाइटिंग की नौबत आ गई। समय की कृपा से उस दिन मेरे साथ मेरा एक संधी भी था। उस दिन मेरा संहियवा राजनीति खेल गया। मेरी मनबढ़ई को पकड़ने की जगह वो पिटने वाले को पकड़ लिया। उसकी पकड़ से मुझे मौका मिला। पिटने वाले की पलई में दू-चार हूरा और रख दिया। तब तक अन्य लोग भी ता-ता थम्मा करते हुए दौड़े और मुझे भी पकड़ लिया। संहियवा की राजनीति के सहारे मैं मार खाने से भी बच गया और पिटने वाले को और पीट भी दिया।

फिर ओरहन घर आया। बाऊ फिर मुझे गरिया दिए। गरियाने के बाद फिर टुई से आँख मार दिए- हमारे जीरो टॉलरेंस नीति क बुरा मत मनिहे बचची।

जीरो टॉलरेंस पार्टी के मोहल्ला प्रभारी मेरे घर के सामने वाले घर में रहते हैं। रात को बिजली कटती है, तब वे अपनी बालकनी में आते हैं। मोबाइल का स्पीकर ऑन कर विद्युत उपकेंद्र का नम्बर मिलाते हैं।

-बिजली क्यों गई?

-जम्फर उड़ गया है।

-कब तक ठीक होगा?

-आधा घंटा लगेगा।

-आधे घंटे में ठीक हो जाना चाहिए। सरकार बदल गई है।

बालकनी में बैठ पसीना-पसीना होते हुए, मच्छरों को पट्ट-पट्ट मारते हुए आधे घंटे इंतजार करते हैं।  
उनको पसीना छोड़ते हुए और मच्छर मारते हुए देखता हूँ, तो सोचता हूँ- इनके पास इन्वर्टर भी है। पंखे  
की हवा लेते हुए इंतजार करने में क्या हर्ज है?

आधे घंटे इंतजार के बाद उन्होंने फोन किया। स्पीकर भी ऑन किया।

-अभी तक जम्फर नहीं बदला ?

-आधा घंटा और लगेगा। दो ही कर्मचारी हैं। समय तो लगेगा ही।

-सरकार बदल गई है। अपनी कार्यप्रणाली सुधार लो। प्रधानमंत्री 18 घंटे काम करते हैं। मुख्यमंत्री तड़के  
चार बजे उठ जाते हैं और देर रात तक काम करते हैं। तुम एक मामूली सा काम नहीं कर सकते। सुधार  
जाओ। सरकार बदल गई है।

-उतनी बड़ी और वजनी सीढ़ी साइकिल से लेकर चलनी पड़ती है। समय थोड़ा आगे-पीछे होगा ही।

-जबान लड़ाते हो। अभी तुम्हारे साहब से शिकायत करता हूँ। इतनी दूर फेकवाऊंगा कि घर आने का  
सपना देखोगे।

-ठीक है। आपको जो करना है करिए।

कर्मचारी के सब्र का बाँध जवाब दे गया।

कर्मचारी की शिकायत के लिए उन्होंने साहब को फोन मिलाया। साष्टांग प्रणाम किया। मौसी और बच्चों  
का हाल-चाल लिया। मधुर वाणी में बिजली कटने के बारे में बताया। नमकीन वाणी में कर्मचारी की  
शिकायत की। उधर से जो भी आश्वासन मिला, वो सुन नहीं पाया। स्पीकर ऑन नहीं था।

एक दिन कर्मचारी घर के सामने वाले खम्भे पर खट-खुट कर रहा था। मैंने उससे पूछा- अमुक का  
बिजली विभाग में बड़ा रुतबा है। खम्भे से उतरते हुए कर्मचारी ने बताया- होगा क्यों नहीं; टैंडर के लिए  
साहब का पैर दबाते-दबाते दूर की रिश्तेदारी खोज निकाली है। साहब अब इनके मौसा हो गए हैं।

कर्मचारी से पहली बार सरकार बदल गई है कहने और आखिरी बार कहने की उनकी गर्जना में अंतर  
होता है। पहली बार कहते हैं, तो लगता है शायद बादल गरज रहे हों। अंतिम बार कहते हैं, तब बादलों  
का गरजना सुनिश्चित हो जाता है। उनका बालकनी में आकर कर्मचारियों से गरजकर बात करना  
अकारण नहीं है। कॉलोनी में अभी तक सभी लोग नहीं जान पाए हैं कि सरकार बदल गई है।

'परफॉर्मेंस' वाली सरकार आ गई है।

सरकार बदलने की सूचना पार्टियाँ अपने-अपने तरीके से देती आई हैं। सरकारी अस्पतालों में जाने वाले मरीज और उनके तीमारदार नहीं जानते कि सरकार बदल गई है, तो सरकार अस्पताल की इमारत को नीले रंग से रंगवा देती है। सरकारी अस्पताल जाने वाले समझ जाते हैं, सरकार बदल गई है। बसपा की सरकार आ गई है। रोडवेज बस से यात्रा करने वाले यात्री नहीं जानते कि सरकार बदल गई है, तो सरकार रोडवेज बसों को हरे और लाल रंग में रँगवा देती है। यात्री समझ जाते हैं, सरकार बदल गई है। सपा की सरकार आ गई है। सरकारी कर्मचारी और अधिकारी नहीं मानते कि सरकार बदल गई है, तो सरकार उनकी कुर्सी पर भगवा तौलिया रखवा देती है। कर्मचारी और अधिकारी मान जाते हैं, सरकार बदल गई है। भाजपा की सरकार आ गई है।

होश संभालने के बाद उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का मुख्यमंत्री नहीं देखा। अतीत को याद कर लें, कांग्रेस सरकार बदलने की सूचना कैसे देती थी।

एक दिन चाय की दुकान पर मोहल्ला प्रभारी मिले। अपनी तकिया कलाम मंडली के साथ कानून-व्यवस्था की आरती गा रहे थे। उनकी आरती सुन मैं सोच रहा था- एनकाउंटर में ठोक अपराध रोकने की मुख्यमंत्री की नीति के बाद भी अपराध का ग्राफ ऊपर चढ़ता जा रहा है। पुलिस पर प्रमोशन के लिए फर्जी मुठभेड़ों और बेगुनाहों को मारने का आरोप लग रहा है। पुलिस का अपराधीकरण बढ़ रहा है। ये कौन सी कानून-व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त बता रहे हैं?

बातचीत के दौरान जैसे ही उन्होंने 'सरकार बदल गई है' कहा, मैंने पूछा- पार्टी बदलती है, मुख्यमंत्री बदलते हैं; पर सरकार अपना चरित्र बदलने में बड़ी आनाकानी करती है।

-इसका कारण ये है कि जनता सहयोग नहीं करती। जनता सहयोग करे तो सब कुछ बदला जा सकता है।

-कानून-व्यवस्था भी सुधारी जा सकती है?

-बिल्कुल। किसी के घर में हथियारबंद डकैत घुसें तो घरवालों को डकैतों से कहना चाहिए- सुधर जाओ। सरकार बदल गई है। ये सुनते ही डकैत हथियार फेक भाग जाएंगे। किसी से रंगदारी माँगी जाए, तो रंगदारी माँगने वाले से कहना चाहिए- सुधर जाओ। सरकार बदल गई है। ये सुनते ही रंगदारी माँगने वाला अदालत में आत्मसमर्पण कर देगा। हत्या की नीयत से अपराधी गोली चलाने वाला हो, तो उससे कहना चाहिए- सुधर जाओ। सरकार बदल गई है। ये सुनते ही अपराधी सीधे जेल जाएगा। 14 साल कैद-ए-बामुशक्कत के बाद ही बाहर आएगा।

-सरकार बदल गई है कहने से बलात्कारियों का भी हृदय परिवर्तन हो जाएगा?

-बिल्कुल।

मैंने उनसे वादा किया कि अपराधियों को अौकात में रखने वाले आपके फार्मूले से मैं जनता को जरूर परिचित कराऊँगा। वे खुश हुए। उन्होंने चाय वाले से कहा- भाई की चाय का पैसा मेरे खाते में लिख लिया करो।

## उनकी बात

### पेरियार ललई सिंह यादव : तोपों की गड़गड़ाहट के बीच रोटियाँ संकने वाला क्रांतिकारी!

#### कँवल भारती

पढ़ाई के दौरान ही मैं डा. आंबेडकर और बौद्धधर्म के मिशन से जुड़ गया था। आस-पास के क्षेत्रों में जहाँ भी मिशन का कार्यक्रम होता, मैं भी उसमें भाग लेने चला जाता था। 11 मार्च 1973 को दिल्ली के रामलीला मैदान में तिब्बत के दलाई लामा ने लगभग बीस हजार दलितों को बौद्धधर्म की दीक्षा दिलाई थी। उन दीक्षा लेने वालों की भीड़ में एक मैं भी था। पहली बार मैंने पेरियार, ललई सिंह को वहीं पर देखा था। आसमानी कुर्ता-पाजामे में एक पतला-दुबला आदमी कड़क आवाज में किताबें बेच रहा था। यही पेरियार ललई सिंह थे, जो उस समय तक 'सच्ची रामायण' का मुकदमा जीतकर दलित-पिछड़ों के हीरो बने हुए थे। मैं उनकी किताबें पढ़ चुका था, पर उन्हें देख पहली बार रहा था। उन्हें बहुत से लोग घेरे हुए थे, जो स्वाभाविक भी था। वे सबके प्रिय लेखक थे, जिन्होंने 1967 में बौद्धधर्म अपनाने के बाद 'यादव' शब्द हटा लिया था। उस दौर के दो ही हमारे प्रिय लेखक थे-चन्द्रिकाप्रसाद जिजासु और पेरियार ललई सिंह यादव, जिन्होंने हमारी पूरी सोच को बदल दिया था। उस समय तक मेरी एक किताब 'बुद्ध की दृष्टि में ईश्वर, ब्रह्म और आत्मा' छप चुकी थी, पर लेखक के रूप में मैं अनजाना ही था।

1978 में मेरी दूसरी किताब 'डा. आंबेडकर बौद्ध क्यों बने?' छपी, और उसी दौरान मैंने रामपुर से 'मूक भारत' पाक्षिक का सम्पादन आरम्भ किया। उसी समय मैंने ललई सिंह जी को अपनी किताब और 'मूक भारत' का अंक भेजा। प्रवेशांक में बाबू जगजीवन राम की प्रशंसा में लेख था, जिसकी पूरी कहानी में बाबूजी पर अपने संस्मरणात्मक लेख में दे चुका हूँ। लेख पढ़कर तुरन्त ललई सिंह जी का अशोक पुस्तकालय, झींझक, कानपुर से 22/2/80 का पत्र आया। पत्र में लिखा- 'मूक भारत' मिला। अंक पढ़ा। सफलता की कामना।' उसके बाद कुछ अपनी बीमारी के बारे में लिखा कि आँखों में मोतियाबिन्द है, कुलंग बात है। भारी दवा कराई। कोई लाभ नहीं। वैद्यों, डाक्टरों सबसे घृणा हो गई है। इसके बाद बाबूजी पर एक बेबाक टिप्पणी- 'यह लोग कंजरो के पालतू कुत्तों की तरह मालिकों के इशारों पर भूँकने वाले हैं। श्री जगजीवन राम भी ऐसे ही भूँका करते थे, करते हैं। इन लोगों व बाबू जगजीवन राम का काम केवल इतना है कि जब इन्हें जान पड़े कि अछूत जनता का ध्यान आकर्षण करना है, तब एक भाषण अछूतों की परेशानी का लम्बा सा झाड़ दिया। वाह! वाह! प्राप्त की। फिर चुप। वह अपने भाषण को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकते, न पार्टी में रहकर अपने आकाओं से परिणित करा सकते। बाबू जगजीवन राम अछूत हैं, अछूत ही मरेंगे। यही दशा श्री रामधन व श्री मोती राम, कानपुर की है, रहेगी।' पत्र में आगे और भी तीखा है। कुछ बातें आंबेडकर भवन, नई दिल्ली और अटलबिहारी बाजपेई के बारे में भी लिखी गई थीं, पर ईक धुल जाने से वह पढ़ा नहीं जा पा रहा है। स्याही के कलम की लिखाई मिट्टी के घर में 30-35 साल में खराब होनी ही थी। 'मूक भारत' में श्री रामधन का वक्तव्य और श्री मोतीराम शास्त्री का साक्षात्कार भी छपा था। पर यह मोतीराम शास्त्री थे, जो कानपुर के नहीं, चन्दौली, बनारस के बौद्ध विद्वान थे।



इसके बाद ललई सिंह जी से मेरी दूसरी मुलाकात अक्टूबर 1980 में कांशीराम के बामसेफ के अधिवेशन में नई दिल्ली में हुई। यह बहुत ही महत्वपूर्ण भेंट थी, जिसने मुझे एक बड़ी साहित्यिक जिम्मेदारी दी। इसका विस्तृत उल्लेख मैंने अपनी किताब 'धम्मविजय' (अक्टूबर, 1981) के प्रकाशकीय में किया है। यहाँ मैं उसी से नकल करता हूँ-

बामसेफ के अधिवेशन में, जो अक्टूबर 1980 में हुआ था, पेरियार श्री ललई सिंह ने मुझे एक पुस्तक दिखाते हुए कहा, 'यह 'कालविजय' है। इसमें जो पंक्तियाँ लाल स्याही से रेखांकित हैं, उनको पढ़ जाओ। मैं आदेश नहीं टाल सका, पुस्तक हाथ में ली। शुरु के पृष्ठ पलटे- सम्राट अशोक के जीवन पर आधारित एक ऐतिहासिक नाटक; लेखक श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र। मैं कुतूहल में पूरे नाटक की रेखांकित पंक्तियाँ पढ़ गया। पढ़कर तो मैं अवसन्न रह गया। लगा, जैसे किसी ने एक साथ कई हथौड़ों से सिर पर प्रहार किया हो। एक स्वच्छ, सुगन्धित और पवित्र वाटिका का उजाड़- मेरा अंतर्मन विद्रोही हो गया। इसी विद्रोह-भाव से मैंने श्री ललईसिंह को उत्तर दिया, 'यह बौद्धधर्म को कलंकित और अपमानित करने का एक सुनियोजित षड्यन्त्र है। किसकी शैतानियत है इसके पीछे?' किन्तु उन्हीं से जब यह मालूम हुआ कि यह पुस्तक आगरा और रूहेलखण्ड विश्वविद्यालयों में हिन्दी कक्षाओं में पढ़ाई जा रही है, तो फिर, सचमुच सबकुछ आँखों के आगे स्पष्ट हो गया।

श्री ललई सिंह की हार्दिक इच्छा थी कि 'कालविजय' के प्रकाशन और उसकी बिक्री पर प्रतिबन्ध लगे, और उसके लेखक के विरुद्ध 124 ए के अन्तर्गत मुकदमा चले। इसमें सन्देह भी नहीं कि श्री ललई सिंह और श्री जगन्नाथ आदित्य ने इस दिशा में काफी संघर्ष किया। उनके प्रयास से देश भर से लाखों जापन भारत सरकार के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री तथा प्रदेश के राज्यपाल को भेजे गए, और आगरा में (8-9 मार्च 1980 को) चक्कीपाट पर बालासाहेब प्रकाशराव आंबेडकर के नेतृत्व में एक विशाल सम्मेलन हुआ, जिसमें 'कालविजय' को जब्त कराने के सम्बन्ध में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किया गया। इधर भिक्षु संघ भी 'कालविजय' के विरुद्ध प्रधानमन्त्री से मिला और उसने अपना लिखित विरोध प्रदर्शित किया। मेरे लिए यह पहला अवसर था, जब मैं इतने बड़े सम्मेलन का साक्षी बना था।

कालविजय के खिलाफ पूरे देश में विरोध-प्रदर्शन हुआ था, जिसका एकमात्र श्रेय श्री ललई सिंह को ही जाता था। मैंने उन्हें इस सफलता के लिए बधाई दी। उसके उत्तर में उन्होंने 2 मार्च 1981 को मुझे लिखा- 'क्या आप समझते हैं, कि 'कालविजय' की जब्ती का प्रोपेगण्डा इतने से ही जब्त हो जाएगा। आप बच्चे हैं। कुरफुती कुरफुती है। शक्तिशाली की इच्छा का नाम न्याय है। यदि असली न्याय, न्याय होता, तो मैं सच्ची रामायण की चाभी, आर्यों का नैतिक पोल प्रकाश, हिन्दू संस्कृति में वर्णव्यवस्था और जातिभेद क्यों हार जाता?'

इसी दौरान मैं सरकारी सेवा में लखनऊ चला गया था। उसके बाद फिर कभी ललई सिंह जी से मिलना नहीं हो सका। सरकारी सेवा की उलझनों और व्यस्तताओं के कारण मिशन में भी मेरी सक्रियता खत्म हो गई थी। लेकिन ललई सिंह जी का अमिट प्रभाव मेरे मानस पर हमेशा बना रहा। अन्त में मैंने 'कालविजय' का जवाब लिखने के अपने विचार से ललई सिंह जी को अवगत कराया, और लगभग दो महीने के प्रयास से मैंने तीखी आलोचना के साथ 'कालविजय' का जवाब 'धम्मविजय' के रूप में पूरा किया। यह किताब अक्टूबर 1981 में छपी और पहली प्रति मैंने ललई सिंह जी को भेजी। किताब देखकर

वह बहुत खुश हुए, बोले, यह काम तुम ही कर सकते थे। पर उन्होंने यह भी कहा कि इस का नाम मुझे 'सम्राट अशोक का धम्मविजय' रखना चाहिए था। उन्होंने इसकी सौ से भी ज्यादा प्रतियां बेचीं। अशोक पुस्तकालय के सूची पत्र में 'धम्मविजय' का नाम आज भी दर्ज है। डा. डी. आर. जाटव ने लिखा कि 'कालविजय' का जवाब 'धम्मविजय' ही हो सकता था।' इस किताब को सबसे ज्यादा बौद्ध भिक्षुओं ने खरीदा था। यह उस समय उनकी सबसे प्रिय पुस्तक थी। शायद ही कोई भिक्षु होगा, जिसके पास 'धम्मविजय' न होगी। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद भदन्त शान्त रक्षक ने तो एक लम्बे लेख में मुझे 'श्रमण संस्कृति के रक्षक' की उपाधि दी थी।

सत्तर के दशक में, बहुजन नेता और विचारक रामस्वरूप वर्मा ने दलित-पिछड़ों में ब्राह्मणवाद के उन्मूलन के लिए अर्जक विचारधारा चलाई थी। उस समय वर्मा जी उत्तर प्रदेश सरकार में वित्त मन्त्री थे। उन्होंने लखनऊ से 'अर्जक' अखबार निकाला था, जो साप्ताहिक था और बाद में इसी नाम से राजनीतिक पार्टी भी बनाई थी। इसी अर्जक आन्दोलन से ललई सिंह जी भी जुड़ गए थे। समान वैचारिकी ने उन्हें और वर्मा जी, दोनों को एक-दूसरे का घनिष्ठ साथी बना दिया था। वर्मा जी ने ललई सिंह जी के निधन पर एक मार्मिक संस्मरण उनके अभिन्न सहयोगी जगन्नाथ आदित्य को सुनाया था, जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी किताब में इस प्रकार किया है-

'वह हमारे चुनाव प्रचार में भूखे-प्यासे एक स्थान से दूसरे स्थान भागते। बोलने में कोई कसर नहीं रखते। उनके जैसा निर्भीक भी मैंने दूसरा नहीं देखा। एक बार चुनाव प्रचार से लौटे पेरियार ललई सिंह जी को मेरे साथी ट्रैक्टर ट्राली से लिए जा रहे थे। जैसे ही खटकर गाँव के समीप से ट्रैक्टर निकला, उन पर गोली चला दी गई। संकट का आभास पाते ही वह कुछ झुक गए, गोली कान के पास से निकल गई। लोगों ने गाँव में चलकर रुकने का दबाव डाला। किन्तु वह नहीं माने। निर्भीकता से उन्होंने कहा, 'चलो जी, यह तो कट्टेबाजी है, मैंने तो तोपों की गड़गड़ाहट में रोटियां सेकीं हैं।'

ललई सिंह जी ने सही कहा था। वह 1933 में ग्वालियर की सशस्त्र पुलिस बल में बतौर सिपाही भर्ती हुए थे। पर कांग्रेस के स्वराज का समर्थन करने के कारण, जो ब्रिटिश हुकूमत में जुर्म था, वह दो साल बाद बरखास्त कर दिए गए। उन्होंने अपील की और अपील में वह बहाल कर दिए गए। 1946 में उन्होंने ग्वालियर में ही 'नान-गजेटेड मुलाजिमान पुलिस एण्ड आर्मी संघ' की स्थापना की, और उसके सर्वसम्मति से अध्यक्ष बने। इस संघ के द्वारा उन्होंने पुलिस कर्मियों की समस्याएं उठाईं और उनके लिए उच्च अधिकारियों से लड़े। जब अमेरिका में भारतीयों ने लाला हरदयाल के नेतृत्व में 'गदर पार्टी' बनाई, तो भारतीय सेना के जवानों को स्वतन्त्रता आन्दोलन से जोड़ने के लिए 'सोलजर आफ दि वार' पुस्तक लिखी गई थी। ललई सिंह ने उसी की तर्ज पर 1946 में 'सिपाही की तबाही; किताब लिखी, जो छपी तो नहीं थी, पर टाइप करके उसे सिपाहियों में बांट दिया गया था। लेकिन जैसे ही सेना के इंस्पेक्टर जनरल को इस किताब के बारे में पता चला, उसने अपनी विशेष आज्ञा से उसे जब्त कर लिया। 'सिपाही की तबाही' वार्तालाप शैली में लिखी गई किताब थी। यदि वह प्रकाशित हुई होती, तो उसकी तुलना आज महात्मा जोतिबा फुले की 'किसान का कोड़ा' और 'अछूतों की कैफियत' किताबों से होती। श्री जगन्नाथ आदित्य ने अपनी पुस्तक में 'सिपाही की तबाही' से कुछ अंशों को उद्धरित किया है, जिनमें सिपाही और उसकी पत्नी के बीच घर की बदहाली पर संवाद होता है। अन्त में लिखा है- 'वास्तव में पादरियों, मुल्ला-मौलवियों-पुरोहितों की अनदेखी कल्पना स्वर्ग तथा नर्क नाम की बात बिल्कुल झूठ है। यह है

आँखों देखी हुई, सब पर बीती हुई सच्ची नरक की व्यवस्था सिपाही के घर की। इस नरक की व्यवस्था का कारण है-सिन्धिया गवर्नमेन्ट की बदइन्तजामी। अतः इसे प्रत्येक दशा में पलटना है, समाप्त करना है। 'जनता पर जनता का शासन हो' तब अपनी सब माँगें मन्जूर होंगी।'

इसके एक साल बाद, ललई सिंह ने ग्वालियर पुलिस और आर्मी में हड़ताल करा दी, जिसके परिणामस्वरूप 29 मार्च 1947 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमा चला, और उन्हें पाँच साल के सश्रम कारावास की सजा हुई। 9 महीने जेल में रहे, और जब भारत आजाद हुआ, तब ग्वालियर स्टेट के भारत गणराज्य में विलय के बाद, वह 12 जनवरी 1948 को जेल से रिहा हुए।

1950 में सरकारी सेवा से निवृत्त होने के बाद वह ग्वालियर से अपने गाँव झींझक आ गए और आजीवन वहीं रहे। अब वह समाज को बदलने की दिशा में कार्य कर रहे थे। इसके लिए साहित्य को माध्यम बनाया। उन्होंने 'अशोक पुस्तकालय' नाम से प्रकाशन संस्था कायम की और अपना प्रिन्टिंग लगाया, जिसका नाम 'सस्ता प्रेस' रखा था। नाटक लिखने की प्रतिभा उनमें अद्भुत थी, जिसका उदाहरण 'सिपाही की तबाही' में हम देख चुके हैं। एक तरह से हम कह सकते हैं कि उनके लेखन की शुरुआत नाटक विधा से ही हुई थी। उन्होंने पाँच नाटक लिखे- (1) अंगुलीमाल नाटक, (2) शम्बूक वध, (3) सन्त माया बलिदान, (4) एकलव्य, और (5) नाग यज्ञ नाटक। 'सन्त माया बलिदान' नाटक सबसे पहले स्वामी अछूतानन्द जी ने 1926 में लिखा था, जो अनुपलब्ध था। ललई सिंह जी ने उसे लिखकर एक अत्यन्त आवश्यक कार्य किया था। गद्य में भी उन्होंने तीन किताबें लिखी थीं- (1) शोषितों पर धार्मिक डकैती, (2) शोषितों पर राजनीतिक डकैती, और (3) सामाजिक विषमता कैसे समाप्त हो? इसके सिवा उनके राजनीतिक-सामाजिक राकेट तो लाजवाब थे। यह साहित्य हिन्दी साहित्य के समानान्तर नई वैचारिक क्रान्ति का साहित्य था, जिसने हिन्दू नायकों और हिन्दू संस्कृति पर दलित वर्गों की सोच को बदल दिया था। यह नया विमर्श था, जिसका हिन्दी साहित्य में अभाव था। ललई सिंह के इस साहित्य ने बहुजनों में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध विद्रोही चेतना पैदा की और उनमें श्रमण संस्कृति और वैचारिकी का नवजागरण किया।

इसी समय (सम्भवतः 1967 में) पेरियार ई. वी. रामास्वामी नायकर एक अल्पसंख्यक सम्मेलन में लखनऊ आए थे। उस काल में वह पूरे देश के बहुजनों के क्रान्तिकारी नेता बने हुए थे। ललई सिंह जी भी उनसे बेहद प्रभावित थे। वह उनके सम्पर्क में आए और उन्होंने उनसे उनकी पुस्तक 'दि रामायना: ए डू रीडिंग' को हिन्दी में लाने के लिए अनुमति माँगी। लेकिन नायकर जी अपनी तीन अन्य किताबों के साथ इसके अनुवाद की अनुमति भी चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु जी को दे चुके थे। इसलिए नायकर जी ने ललई सिंह जी से उस पर कुछ समय बाद विचार करने को कहा। जिज्ञासु जी ने उनकी तीन पुस्तकें, जिनमें पहली, उनका संक्षिप्त जीवन परिचय (ए पेन पोर्ट्रेट), दूसरी 'फिलोसोफी' (भाषण) और तीसरी, 'सोशल रिफार्म एण्ड रेवोल्यूशन' (जिसके अंग्रेजी लेखक ए. एम. धर्मालिंगन थे), को श्री दयाराम जैन से अनुवाद कराकर एक ही जिल्द में 'पेरियार ई. वी. रामास्वामी नायकर' नाम से बहुजन कल्याण माला के अन्तर्गत 1970 में प्रकाशित करा दिया था। पर, 'दि रामायना: ए डू रीडिंग' का अनुवाद वह नहीं करा सके थे। अन्ततः, नायकर जी ने 1 जुलाई 1968 को पत्र लिखकर ललई सिंह को 'दि रामायना: ए डू रीडिंग' के अनुवाद और प्रकाशन की अनुमति प्रदान कर दी। उन्होंने अंग्रेजी में लिखा था- 'जिन्हें पहले अनुमति दी थी, वह उसे अभी तक प्रकाशित नहीं कर सके हैं, इसलिए आपको अनुमति दी जाती है।

1968 में ही ललई सिंह जी ने 'दि रामायना: ए डू रीडिंग' का हिन्दी अनुवाद करा कर 'सच्ची रामायण' नाम से प्रकाशित कर दिया। छपते ही सच्ची रामायण ने वह धूम मचाई कि हिन्दू धर्मध्वजी उसके विरोध में सड़कों पर उतर आए। तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार ने दबाव में आकर 8 दिसम्बर 1969 को धार्मिक भावनाएं भड़काने के आरोप में किताब को जब्त कर लिया। मामला हाईकोर्ट में गया। वहाँ एडवोकेट बनवारी लाल यादव ने 'सच्ची रामायण' के पक्ष में जबरदस्त पैरवी की। फलतः 19 जनवरी 1971 को जस्टिस ए. कीर्ति ने जब्ती का आदेश निरस्त करते हुए सरकार को निर्देश दिया कि वह सभी जब्तशुदा पुस्तकें वापिस करे और अपीलान्ट ललई सिंह को तीन सौ रुपए खर्च दे।

नायकर जी ने 'दि रामायना: ए डू रीडिंग' में अपने विचार के समर्थन में सन्दर्भ नहीं दिए थे। उस अभाव को पूरा करने के लिए ललई सिंह ने 'सच्ची रामायण की चाबी' किताब लिखी, जिसमें उन्होंने वे तमाम साक्ष्य और हवाले दिए, जो 'सच्ची रामायण' को समझने के लिए जरूरी थे।

श्री ललई सिंह पेरियार ललई सिंह कैसे बने, इस सम्बन्ध में श्री जगन्नाथ आदित्य लिखते हैं कि 24 दिसम्बर 1973 को नायकर जी की मृत्यु के बाद एक शोक सभा में ललई सिंह जी को भी बुलाया गया था। यह सभा कहाँ हुई थी, इसका जिक्र उन्होंने नहीं किया है। इस सभा में ललई सिंह के भाषण से दक्षिण भारत के लोग बहुत खुश हुए। उसी सभा में उन्होंने ललई सिंह को अगला पेरियार घोषित कर दिया। उसी समय से वह हिन्दी क्षेत्र में पेरियार के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

बहुजनों के इस अप्रितम योद्धा, क्रांतिकारी लेखक, प्रकाशक और ब्राह्मणवाद के विरुद्ध विद्रोही चेतना के प्रखर नायक ललई सिंह यादव का जन्म 1 सितम्बर 1921 को कानपुर के झींझक रेलवे स्टेशन के निकट कठारा गाँव में हुआ था और 7 फरवरी 1993 को उनके भौतिक शरीर ने अपनी जीवन-यात्रा पूरी की थी। उनके कृतित्व पर एक बड़े साहित्यिक काम की योजना मेरे हाथ में है, देखिए कब तक सफलता मिलती है।

## मंडल कमीशन लागू करने वाले 11 महीने के प्रधानमंत्री वीपी सिंह को किस रूप में याद किया जाए

जयन्त जिज्ञासु

आरक्षण के प्रणेता, उत्तरप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री (9 जून 1980 - 19 जुलाई 1982), भारत सरकार के पूर्व वित्त व रक्षा मंत्री एवं भारत के 7वें प्रधानमंत्री (2 दिसंबर 1989 - 10 नवंबर 1990) विश्वनाथ प्रताप सिंह (25 जून 1931 - 27 नवंबर 2008) की दसवीं पुण्यतिथि के मौके पर आज मुल्क में न्याय पर आस्था भारी है। विकास की जुमलेबाजी के बीच राममंदिर का राग एक बार फिर से फिज़ा में गुंजाया जा रहा है। क्षणिक राजनीतिक लाभ के लिए मानवता को दाँव पर लगाने वाले राजनीतिज्ञ सबसे बड़े देशद्रोही हैं। विश्व हिंदू परिषद अयोध्या में धर्मसभा के नाम पर भीड़ इकट्ठा कर राम मंदिर का मुद्दा उछाल के देश की जनता को गुमराह कर दुनिया को क्या संदेश देना चाह रहा है? वीपी सिंह होते, तो आज लालू प्रसाद व शरद यादव के साथ मिलकर इसके बरक्स पूरे देश में "मंडल सभा" का आयोजन करते।

लोकतंत्र में चुनावी तंत्र की कमज़ोरियों का लाभ उठाकर सत्तासीन होने वाले लोग जब ये भूल जाते हैं कि जम्हूरियत जुमलेबाजी से नहीं चला करती, न ही यह किसी की जागीर होती है, तो सामाजिक न्याय व सांप्रदायिक सौहार्द के लिए बड़ा संकट पैदा हो जाता है। विश्वनाथ प्रताप सिंह भलीभांति जानते थे कि चाहे बहुमत की सरकार हो या अल्पमत की, लोकराज लोकलाज से ही चलना चाहिए। आज स्थिति विकट है। एक तरफ विकास के बड़े-बड़े दावे किये जा रहे हैं, दुनिया भर में घूम-घूम कर डंका पीटा जा रहा है, तो दूसरी ओर लोगों को गृहदाह की ओर धकेला जा रहा है।

आज कोई वचनपत्र बांट रहा है तो कोई संकल्प पत्र, मगर सही मायने में घोषणापत्र में जनता से किये वायदे के प्रति बहुत कम लोग गंभीर नज़र आ रहे हैं। 1989 के आम चुनाव में जनता दल के घोषणापत्र में मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करना शामिल था। मगर जब उसके एक अंश को लागू किया गया तो सरकार को बाहर से समर्थन कर रही भाजपा के आडवाणी ने सोमनाथ से कमंडल रथ निकाल दिया। शरद यादव ने संसद में भाषण दिया था कि यह कोई राम का रथ नहीं, बल्कि भाजपा का रथ है। आडवाणी की रथयात्रा तो मीडिया को खूब याद है, मगर शरद जी की 25 अगस्त 1992 को मुरहो (मधेपुरा) से निकाली गई मंडल रथ यात्रा किसी के मानस पर अब शेष नहीं है। इस कटु सत्य से भारतीय समाज का कई सिरा खुलता है।

90 के दशक में पटना के गाँधी मैदान की सद्भावना रैली में देश के सभी बड़े नेताओं की मौजूदगी में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद जनसैलाब के बीच जोशोखरोश के साथ वी पी सिंह का अभिनंदन कर रहे थे :

राजा नहीं फ़कीर है  
भारत की तकदीर है।

वहीं मनुवादी लोग तंज कस रहे थे:

राजा नहीं रंक है  
देश का कलंक है।

7 अगस्त 1990 को मंडल कमीशन लागू करने की घोषणा वीपी सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने की थी। शरद यादव, रामविलास पासवान, अजित सिंह, जार्ज फ़र्नांडिस, मधु दंडवते, सुबोधकांत सहाय, आदि की सदन के अंदर धारदार बहसों व सड़क पर लालू प्रसाद जैसे नेताओं के संघर्षों की परिणति वीपी सिंह द्वारा पिछड़ोत्थान के लिए ऐतिहासिक, साहसिक व अविस्मरणीय फैसले के रूप में हुई।

वीपी सिंह का कालजयी वक्तव्य जनमानस पर आज भी अंकित है-

"हमने मंडल रूपी बच्चा माँ के पेट से बाहर निकाल दिया है, अब कोई माई का लाल इसे माँ के पेट में नहीं डाल सकता है। यह बच्चा अब प्रोग्रेस ही करेगा। मंडल से राजनीति का ग्रैमर बदल गया और एक चेतना डिप्राइव्ड सेक्शन में आई, जो पावर स्ट्रक्चर में नहीं थे, उनको एक कॉन्शसनेस आयी। हम समझते हैं, ये कॉन्शसनेस इंडिविजुअल पार्टी या इंडिविजुअल लीडर से बड़ी चीज़ आई। हो सकता है, कोई एक पिछड़े वर्ग का नेता इलेक्शन हारे या जीते, लेकिन उस पर यह आरोप नहीं लगाना चाहिए कि मंडल सफल हुआ या विफल क्योंकि पंचायत से लेकर पार्लियामेंट तक का सोशल कंपोजिशन देखें तो वह बदल रहा है। पार्टी कोई भी हो, डिप्राइव्ड सेक्शन के लोग ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में आ रहे हैं जिससे डिस्क्रिमिनेशन का सोशल कंपोजिशन बदल गया है।"

गेल ओम्बेट कहती हैं कि 90 के मंडल आंदोलन के बाद भारत में कोई बड़ा आंदोलन नहीं हुआ। उस दौर की राजनीति का भविष्य पर होने वाले असर को लेकर विश्वनाथ प्रताप सिंह का मानना था, "भारत की राजनीति में आज जो हो रहा है, उसका कारण है सदियों से हाशिये पर रखे गये लोगों में उनके अधिकारों के प्रति जागृति आना। अगले दस साल उन कौमों के रहेंगे जिनको आज तक कुछ नहीं मिला, उससे अगले दस साल उनके होंगे जिनको इन दस सालों में भी कुछ नहीं मिलेगा और यह चलता रहेगा"।

कहां तक पहुंचा आरक्षण का सफ़र, एक नज़र:

29 जनवरी 1953 को प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग साहित्यकार दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर की अध्यक्षता में गठित हुआ। कालेलकर ने अपनी रिपोर्ट 30 मार्च 1955 को केंद्र सरकार को सौंपी थी। अपनी अनुशंसाओं में 1961 की जनगणना जातिगत आधार पर कराने, सम्पूर्ण स्त्री को पिछड़ा मानते हुए मेडिकल, इंजीनियरिंग आदि में 70%, सभी सरकारी व स्वायत्तशासी संस्थाओं में प्रथम श्रेणी में 25%,

द्वितीय श्रेणी में 33.33% तथा तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में 40% आरक्षण की सिफारिश कालेलकर ने की थी। यह रिपोर्ट अपने आप में अद्भुत इसलिए है कि तमाम विसंगतियों और गैर बराबरी का जिक्र करने के बाद रिपोर्ट बनाने वाला ही आखिर में नोट लिखता है कि इसे फिलहाल लागू नहीं किया जाए। कहते हैं कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री पंडित नेहरू ने पंडित कालेलकर की सिफारिशें खारिज कर दी थी और रिपोर्ट पर कालेलकर से जबरन लिखवा लिया था कि इसे लागू करने से सामाजिक सद्भाव बिगड़ जायेगा, अतः इसे लागू न किया जाय।

392 पृष्ठ की मंडल कमीशन की रिपोर्ट देश को सामाजिक-आर्थिक विषमता से निबटने का एक तरह से मुकम्मल दर्शन देती है जिसे बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री व सांसद बी.पी. मंडल ने अपने साथियों के साथ बड़ी लगन से तैयार किया था। 20 दिसंबर 1978 को प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने अनुच्छेद 340 के तहत 6 सदस्यीय नए पिछड़ा वर्ग आयोग के गठन की घोषणा सदन में की जिसके अध्यक्ष बीपी मंडल व सचिव गिल साहब थे। आयोग की विज्ञप्ति 1 जनवरी, 1979 को जारी की गई, जिसकी रिपोर्ट आयोग ने 31 दिसंबर 1980 को गृहमंत्री ज्ञानी जेल सिंह को सौंपी, राष्ट्रपति ने अनुमोदित किया। 30 अप्रैल 1982 को इसे सदन के पटल पर रखा गया, जो 10 वर्ष तक फिर ठंडे बस्ते में रहा। इसे न इंदिरा गांधी ने लागू किया न राजीव गांधी ने। बीपी मंडल ने 3000 से ज़्यादा जातियों को एक जमात के रूप में सामने लाया और उनकी संख्या 52 % सामने आई। इस रपट की अहम सिफारिशें कुछ यूँ थीं:

पिछड़ों को सरकारी सेवाओं में 27% आरक्षण, प्रोन्नति में पिछड़ों को आरक्षण, पिछड़ों का क़ोटा न भरने पर तीन साल तक खाली रखने की संस्तुति, SC/ST की तरह ही आयु सीमा में OBC को छूट देना, SC/ST की तरह ही पदों के प्रत्येक वर्ग के लिए सम्बन्धित पदाधिकारियों द्वारा रोस्टर प्रणाली अपनाने का प्रावधान, वित्तीय सहायता प्राप्त निजी क्षेत्र में पिछड़ों का आरक्षण बाध्यकारी बनाने की सिफारिश, कॉलेज, युनिवर्सिटीज़ में आरक्षण योजना लागू करने की सिफारिश, पिछड़े वर्ग को फ़ीस राहत, छात्रवृत्ति, छात्रावास, मुफ्त भोजन, किताब, कपड़ा उपलब्ध कराने की सिफारिश, वैज्ञानिक, तकनीकी व व्यावसायिक संस्थानों में पिछड़ों को 27% आरक्षण देने की सिफारिश, पिछड़े वर्ग के छात्रों को विशेष कोचिंग का इंतजाम करने की सिफारिश, पिछड़े वर्ग के भूमिहीन मजदूरों को भूमि देने की सिफारिश, पिछड़ों की तरक्की के लिए पिछड़ा वर्ग विकास निगम बनाने की सिफारिश, राज्य व केंद्र स्तर पर पिछड़ा वर्ग का अलग मंत्रालय बनाने की सिफारिश एवं पिछड़ा वर्ग आयोग बनाने की सिफारिश।

बोफोर्स विवाद को लेकर वीपी सिंह ने जांच के लिए फाइल आगे बढ़ा दी थी, राजीव गांधी से मनमुटाव के बाद इस्तीफ़ा देकर उन्होंने अरुण नेहरू और आरिफ़ मोहम्मद खान के साथ मिलकर जनमोर्चा का गठन किया। जब जनता दल बना तो उसने 89 के लोकसभा चुनाव में मंडल की सिफारिशें लागू करने की बात घोषणापत्र में शामिल किया।

मंडल कमीशन लागू होने की दास्तान भी कोई कम दिलचस्प नहीं है। हरियाणा में मेहम कांड और कुछ अन्य बिंदुओं पर ताऊ देवीलाल से वीपी सिंह की खटपट कुछ इस कदर बढ़ गई थी कि मंत्रिमंडल से उन्हें ड्रॉप करने तक की बात हो गई। देवीलाल अपना शक्ति-प्रदर्शन करने के लिए एक विशाल रैली करने जा रहे थे। बस यहीं पर शरद यादव ने वीपी सिंह के सामने एक शर्त रख दी कि या तो रैली से पहले मंडल लगाइए, नहीं तो हम देवीलाल जी के साथ अपनी पुरानी यारी निभाएंगे। लगातार सरकार पर मंडराते खतरे और मध्यावधि चुनाव की आशंका को देखते हुए जनता दल के जनाधार को और ठोस विस्तार देने की आकांक्षा पाले वी.पी. सिंह की सरकार ने अंततः 7 अगस्त 1990 को सरकारी नौकरियों में पिछड़ों के लिए 27% आरक्षण लागू करने की घोषणा की। 9 अगस्त को उपप्रधानमंत्री देवीलाल ने वीपी सिंह के मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। चाहे जो भी हो, पर उपेक्षित समाज विश्वनाथ प्रताप सिंह के इस साहस और दृष्टि को कभी भुला नहीं सकेगा।

10 अगस्त को आयोग की सिफारिशों के तहत सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था करने के खिलाफ देशव्यापी विरोध प्रदर्शन आरंभ हो गया। 13 अगस्त 90 को मंडल आयोग की सिफारिश लागू करने की अधिसूचना जारी हुई। 14 अगस्त को अखिल भारतीय आरक्षण विरोधी मोर्चे के अध्यक्ष उज्ज्वल सिंह ने आरक्षण व्यवस्था के विरोध में सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की। 19 सितम्बर को दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र एसएस चौहान ने आरक्षण के विरोध में आत्मदाह किया और एक अन्य छात्र राजीव गोस्वामी बुरी तरह झुलस गए। 17 जनवरी 1991 को केंद्र सरकार ने पिछड़े वर्गों की सूची तैयार की। 8 अगस्त 91 को रामविलास पासवान ने केंद्र सरकार पर आयोग की सिफारिशों को पूर्ण रूप से लागू करने में विफलता का आरोप लगाते हुए जंतर-मंतर पर विरोध प्रदर्शन किया और वे गिरफ्तार किए गए। 25 सितंबर 91 को नरसिंहा राव सरकार ने सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान की। आरक्षण की सीमा बढ़ाकर 59.5 प्रतिशत करने का निर्णय लिया जिसमें ऊँची जातियों के अति पिछड़ों को भी आरक्षण देने का प्रावधान किया गया। 1 अक्टूबर 91 को सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार से आरक्षण के आर्थिक आधार का ब्योरा माँगा।

जब मामला कोर्ट में अटका, तो लालू प्रसाद ने सबसे आगे बढ़ कर इस लड़ाई को थामा, रामजेठमलानी जैसे तेज़तर्रार वकील को न्यायालय में मज़बूती से मंडल का पक्ष रखने के लिए मनाया और लड़ाई को अंजाम तक पहुंचाया। 30 अक्टूबर 91 को मंडल आयोग की सिफारिशों के खिलाफ दायर याचिका की सुनवाई कर रहे उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने मामला नौ न्यायाधीशों की पीठ को सौंप दिया। 16 नवंबर 1992 को इंदिरा साहनी मामले में उच्चतम न्यायालय ने क्रीमी लेयर की बाधा के साथ आंशिक रूप से मंडल कमीशन की सिफारिश को लागू करने का निर्णय सुनाया। साथ ही, पीवी नरसिंहा राव की तत्कालीन सरकार द्वारा आर्थिक रूप से विपन्न अगड़ी जातियों के लिए 10 % आरक्षण के नोटिफिकेशन को सिरे से खारिज किया, और कहा कि पिछड़ेपन का पैमाना महज आर्थिक नहीं हो सकता।



इस मामले में सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन सर्वप्रमुख क्राइटेरिया हैं। फैसले में यह भी कहा गया कि एससी, एसटी और ओबीसी मिलाकर आरक्षण की सीमा 50 फीसदी के पार नहीं जानी चाहिए।

8 सितम्बर 1993 को केंद्र सरकार ने नौकरियों में पिछड़े वर्गों को 27 फीसदी आरक्षण देने की अधिसूचना जारी की। 20 फरवरी 1994 को मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत वी. राजशेखर आरक्षण के जरिए नौकरी पाने वाले पहले अभ्यर्थी बने जिन्हें समाज कल्याण मंत्री सीताराम केसरी ने नियुक्ति पत्र सौंपा। मंडल कमीशन लागू होने के बाद ओबीसी कोटे से पहला आईएएस बनने वाले राजशेखर चारी थे जिनका स्वागत वी. पी. सिंह और शरद यादव ने बुलाकर किया। 1 मई 94 को गुजरात में राज्य सरकार की नौकरियों में मंडल आयोग की सिफारिशों के तहत आरक्षण व्यवस्था लागू करने का फैसला हुआ। 11 नवंबर 94 को उच्चतम न्यायालय ने राज्य सरकार की नौकरियों में कर्नाटक सरकार द्वारा 73 फीसदी आरक्षण के निर्णय पर रोक लगाई।

वर्षों धूल फांकने के बाद मंडल कमीशन की रिपोर्ट पर सामाजिक न्यायपसंद नेताओं द्वारा सदन के अंदर लगातार धारदार बहस और सड़क पर लालू जैसे अदम्य उत्साही लड़ाकाओं के सतत संघर्ष के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री व पिछड़ों के उन्नायक श्री वी पी सिंह ने अपनी जातीय सीमा खारिज करते हुए, बुद्ध की परम्परा का निर्वहन करते हुए इस देश के अंदर लगातार बढ़ती जा रही विषमता की खाई को पाटने हेतु कमीशन की रपट को लागू करने का साहसिक, ऐतिहासिक व सराहनीय कदम उठाकर यह स्पष्ट संदेश दिया कि इच्छाशक्ति हो व नीयत में कोई खोट न हो, तो मिली-जुली सरकार भी कुर्बानी की कीमत पर बड़े फैसले ले सकती है।

वी.पी. सिंह ने जिस मंत्रालय के जिम्मे कमीशन की सिफारिश को अंतिम रूप देने का काम सौंपा था, उसकी लेटलतीफी देखते हुए उन्होंने उसे रामविलास पासवान के श्रम व कल्याण मंत्रालय में डाल दिया। उस समय यह मंत्रालय काफी बड़ा हुआ करता था और अल्पसंख्यक मामले, आदिवासी मामले, सामाजिक न्याय व अधिकारिता, श्रम, कल्याण सहित आज के छह मंत्रालयों को मिलाकर एक ही मंत्रालय होता था। श्री पासवान की स्वीकारोक्ति है कि तत्कालीन सचिव पी.एस. कृष्णन, जो दक्षिण भारतीय ब्राह्मण थे; ने इतने मनोयोग से प्रमुदित होकर काम किया कि दो महीने के अंदर मंडल कमीशन की सिफारिशों को अंतिम रूप दे दिया गया।

दुनिया में आरक्षण से बढ़कर ऐसी कोई कल्याणकारी व्यवस्था नहीं बनी, जिसने इतने कम समय में अहिंसक क्रान्ति के जरिये समाज के इतने बड़े तबके को गौरवपूर्ण व गरिमापूर्ण जीवन जीने में इससे ज्यादा जिससे इतनी बड़ी जमात के लोगों के जीवन-स्तर में काबिले-जिक्र तब्दीली आई हो। सरकार की कुर्बानी देकर आने वाली पीढ़ियों की परवाह करने वाले जननेता वी.पी., शरद, लालू जैसी शख्सियतों के बारे में ही राजनीतिक चिंतक जे. एफ. क्लार्क कह गये : “एक नेता अगले चुनाव के बारे में सोचता है, जबकि एक राजनेता अगली पीढ़ी के बारे में।”

वी.पी. सिंह ने साबित किया कि यदि दूरदृष्टि, सत्यनिष्ठा व इंटैग्रिटी हो, तो अल्पमत की गठबंधन सरकार भी समाजहित व देशहित में ऐतिहासिक व ज़रूरी फैसले ले सकती है। जो काम उनके पहले के प्रधानमंत्री अपने पाँच साल के कार्यालय में भी नहीं कर पाये, उसे उन्होंने 8 महीने में कर दिखाया। उस वक़्त सत्ता व समानांतर सत्ता का सुख भोगने को आदी हो चुके जातिवादी नेताओं ने परिवर्तन की जनाकांक्षाओं को नकारते हुए उल्टे मंडल कमीशन को लागू कराने की मुहिम में जुटे नेताओं को जातिवादी कहना शुरू कर दिया।

मंडल आंदोलन के समय पूर्व मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्रा ने कहा था, “जिस तरह से देश की आजादी के पूर्व मुस्लिम लीग और जिन्ना ने साम्प्रदायिकता फैलाया उसी तरह वी. पी सिंह ने जातिवाद फैलाया। दोनों समाज के लिए जानलेवा है।” वामपंथी दलों के एक धड़े सीपीआई (एमएल) के विनोद मिश्रा ने इसे ‘मंदिर-मंडल फ्रेंज़ी’ कहकर मंडल और कमंडल दोनों को ही एक ही तराजू पर तोल दिया। पर, भाकपा-माकपा ने इस लड़ाई को अपना नैतिक समर्थन दिया था, अपनी सामर्थ्य के मुताबिक ऊर्जा जोड़ी थी। हालांकि, कुछ ‘अगर-मगर’ पर कभी अलग से विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी। फिलहाल इतना कि, 1989 में सदन के अंदर शरद जी की ज़ोरदार बहस के एक टुकड़े को सत्येन्द्र पीएस द्वारा हिन्दी में अनूदित मंडल कमीशन की रपट पर चर्चा करते हुए सीपीएम की सांसद रहीं सुभाषिणी अली जी ने कुछ इस तरह याद किया, “शरद भाई ने सदन में कहा था कि यहां तमाम लोग हैं जो अभी दलितों पिछड़ों के लिए 15 मिनट के भाषण में खूब हाय तौबा मचाएंगे कि उन्हें सब कुछ दे देना चाहिए। फिर उसके बाद एक शब्द का इस्तेमाल करेंगे “लेकिन”। उसके बाद उनका वंचितों के लिए सारा प्रेम खत्म हो जाएगा और वे अपनी जाति के हित में लग जाएंगे” ।

पटना की रैली में तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद ने गरजते हुए कहा था, “चाहे जमीन आसमान में लटक जाए, चाहे आसमान जमीन पर गिर जाए, मगर मंडल कमीशन लागू होकर रहेगा। इस पर कोई समझौता नहीं होगा” । इसके पहले 90 में मंडल के पक्ष में माहौल बनाते हुए अलौली में लालू जी का कार्यक्रम था मिश्री सदा कालिज में। कर्पूरी जी को याद करते हुए उन्होंने कहा, “जब कर्पूरी जी आरक्षण की बात करते थे, तो लोग उन्हें मां-बहन-बेटी की गाली देते थे। और, जब मैं रिज़रवेशन की बात करता हूँ, तो लोग गाली देने के पहले अगल-बगल देख लेते हैं कि कहीं कोई पिछड़ा-दलित-आदिवासी सुन तो नहीं रहा है। ज़ादे भचर-भचर किये तो कुटैबो करेंगे। ये बदलाव इसलिए संभव हुआ कि कर्पूरी जी ने जो ताकत हमको दी, उस पर आप सबने भरोसा किया है।” किसी दलित-पिछड़े मुख्यमंत्री को बिहार में कार्यकाल पूरा करने नहीं दिया जाता था। श्रीकृष्ण सिंह के बाद सफलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूरा करने वाले लालू प्रसाद पहले मुख्यमंत्री थे।

कपड़ा मंत्री शरद यादव, श्रम-कल्याण-रोज़गार मंत्री रामविलास पासवान, उद्योग मंत्री चौधरी अजीत सिंह, रेल मंत्री जॉर्ज फर्नांडिस, गृह राज्यमंत्री सुबोधकांत सहाय; सबने एक सुर से जातिवादियों और कमंडलधारियों को निशाने पर लिया।

8 अक्टूबर 1990 को पटना के गांधी मैदान में जनता दल की रैली में शरद यादव ने कहा था, "जनता दल ने अपने वायदे के मुताबिक हजारों सालों के शोषित पिछड़ों को आरक्षण देकर न केवल अवसरों में भागीदारी की है, बल्कि हमने उनकी सुषुप्त चेतना और स्वाभिमान को भी जगाने का काम किया है। जो हाथ अकलियतों के खिलाफ उठे, उन्हें थाम लो। तुम्हारे इस आंदोलन में अकलियतों का साथ कारगर साबित होगा"।

रामविलास पासवान ने कहा, "वी पी सिंह ने इतिहास बदल दिया है। यह 90 % शोषितों और शेष 10 % लोगों के बीच की लड़ाई है। जगजीवन राम का खुशामदी दौर बीत चुका है और रामविलास पासवान का उग्र प्रतिरोधी ज़माना सामने है" ।

अजित सिंह ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, "सिर्फ चंद अखबार, कुछ राजनीतिक नेता और कुछ अंग्रेज़ीदा लोग मंडल कमीशन का विरोध कर रहे हैं जो कहते हैं कि मंडल मेरिट को फिनिश कर देगा। आपको मंडल की सिफ़ारिशों के लिए कुर्बानी तक के लिए तैयार रहना चाहिए" ।

सुबोधकांत सहाय ने बड़ा उग्र होकर कहा था, "मंडल का चक्का बढ़ चुका है, जो भी जनता के इस चक्र के आगे आएगा, कुचल कर रख दिया जाएगा"

उस ऐतिहासिक सदभावना रैली में वी पी सिंह ने कालजयी भाषण दिया था, "हमने तो आरक्षण लागू कर दिया। अब, वंचित-शोषित तबका तदबीर से अपनी तकदीर बदल डाले, या अपने भाग्य को कोसे।" उन्होंने कहा, "बीए और एमए के पीछे भागने की बजाय युवाओं को गरीबों के दुःख-दर्द का अध्ययन करना चाहिए। लोकसभा और राज्यसभा की 40 फ़ीसदी सीटें गरीबों के लिए आरक्षित कर देनी चाहिए। विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के पास जमा गैस और खाद एजेंसियों को गरीबों के बीच बांट देना चाहिए।" आगे वो बेफ़िक्र होकर कहते हैं, "मैं जानता हूँ कि मुझे प्रधानमंत्री के पद से हटाया जा सकता है, मेरी सरकार गिरायी जा सकती है। वे मुझे दिल्ली से हटा सकते हैं, मगर गरीबों के दरवाजे पर से नहीं।" एक कविता "लिफाफा" में वीपी सिंह ने लिखा:

पैगाम तुम्हारा / और पता उनका / दोनों के बीच / फाड़ा मैं ही जाऊँगा।

तमाम बदनामियाँ वीपी सिंह के सर आईं। लोगों ने यहाँ तक जुमला मारा, "राजा साहब ठीक आदमी थे। उनको अहिरा (शरद यादव) और दुसधा (रामविलास पासवान) ने बिगाड़ दिया"। सरकार गिरने और चंद्रशेखर द्वारा जनता दल को तोड़ कर कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमंत्री बन जाने पर मर्यादा की सारी सीमाएं तार-तार करके ज़ानियों-ध्यानियों ने फ़ब्तियाँ कसी:

अहिरे बुद्धि ठकुरे बल / अंग विशेष में मिल गया जनता दल।

मगर इन सब बातों से वीपी सिंह विचलित नहीं हुए। मुज़फ्फरपुर की एक सभा में उन्होंने कहा, "गरीबों के आँसू जब बूंद बनकर गिरते हैं, तब तेज़ाब बनकर धरती पर अपना दस्तखत बनाते हैं"।

शरद यादव ने मंडल कमीशन लागू होने के बाद चंद्रशेखर द्वारा पार्टी तोड़े जाने के चलते राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के डांवांडोल होने पर 7 नवंबर 1990 को विश्वास मत पर ऐतिहासिक भाषण करते हुए कहा था, "पूरी दुनिया में अक्वल दर्जे के इस देश में हम किस बात पर अभिमान कर सकते हैं? क्या हम इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि सदियों से एक चौथाई आबादी को हमने छूने तक का काम नहीं किया है? उन्हें अछूत बनाकर रखा है। किस बात पर गर्व करें? इस बात पर कि हिन्दुस्तान में लोगों को पेशों से बांध दिया गया है। आज लकड़ी देखो तो बढई दिखता है, लोहा देखो तो लोहार दिखता है, पानी देखो तो मल्लाह दिखता है, गाय देखो तो यादव दिखता है, भैंस देखो तो ग्वाला दिखता है। मंडेला जी का तो हम ताली पीट कर स्वागत करते हैं। वहां तो सिर्फ़ काले-गोरे का अंतर है। लेकिन यहां हिन्दुस्तान में जहां पर यह सदन है, इक्कीसवीं शताब्दी है। और आप यहीं पर चले जाओ यमुना-पार तो वहां पर सोलहवीं शताब्दी है। जहां पर लोग गटर में बसे हुए हैं। क्या इस बात पर हम गर्व कर सकते हैं? या हम इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि दुनिया में सबसे ज्यादा भगवान हमारे यहां पैदा हुए हैं। यह देश गर्व कर सकता है कि यहां पर 33 करोड़ देवी-देवता हैं। 62-63 करोड़ हिन्दुओं पर 33 करोड़ देवी-देवता यानी 2 हिन्दुओं के पीछे एक भगवान है। लेकिन इसके बावजूद इस देश की जैसी दुर्गति कहीं और नहीं है"।

वीपी सिंह ने एक वक्त के बाद कहीं शांत किसी कोने में जाकर सियासत के कोलाहल से खुद को विलग कर लिया। अपनी क्षणिका "झाड़न" में वो अपने अहसास व्यक्त करते हैं:

पड़ा रहने दो मुझे

झटको मत

धूल बटोर रखी है

वह भी उड़ जाएगी।

ज़ाहिर है कि मंडल की सद्भावना रैली, पटना में वीपी सिंह के आह्वान के बाद पसमांदा समाज ने अपनी तकदीर खुद गढ़ना गवारा किया, और नतीजे सामने हैं। हाँ, सामाजिक बराबरी व स्वीकार्यता के लिए अभी और लम्बी तथा दुश्वार राहें तय करनी हैं, बहुत से रास्ते हमवार करने हैं। पर अफ़सोस कि मंडल आयोग को सिर्फ़ आरक्षण तक महदूद कर दिया गया, जबकि बी पी मंडल ने भूमिसुधार को भी ग़ैरबराबरी ख़त्म करने की दिशा में महत्वपूर्ण कारक माना था। स्वाधीनता के बाद भी संपत्ति का बंटवारा तो हुआ नहीं। जो गरीब, उपेक्षित, वंचित थे, वो आज़ादी के बाद भी गरीब और शोषित ही रहे। उनकी ज़िंदगी में कोई आमूलचूल बदलाव नहीं आया। अभी तो आरक्षण ठीक से लागू भी नहीं हुआ है, और इसे समाप्त करने की बात अभिजात्य वर्ग की तरफ से उठने लगी है।

96 में जब संयुक्त मोर्चा की सरकार बन रही थी तो ज्योति बसु, लालू प्रसाद समेत तब के सभी प्रमुख सियासतदां वीपी सिंह के पास प्रधानमंत्री बनने का प्रस्ताव लेकर गए। लोग उनके घर पर बैठकर इंतज़ार करते रहे। वो रिंग रोड घूमने निकल गए और पद स्वीकार करने से मना कर दिया। सत्तालोलुपता व "एकात्म कुर्सीवाद" के इस दौर में यह एक नायाब मिसाल है। वीपी सिंह का जीवन दर्शन उनकी कविता "मुफ़लिस" से समझा जा सकता है:

मुफ़लिस से  
अब चोर बन रहा हूँ मैं  
पर  
इस भरे बाज़ार से  
चुराऊँ क्या  
यहाँ वही चीजें सजी हैं  
जिन्हें लुटाकर  
मैं मुफ़लिस बन चुका हूँ।

वीपी सिंह एक बेहद संजीदा इंसान थे जो सियासत के ऊबड़खाबड़ रास्ते को हमवार करने के लिए साहित्य की सोहबत में खुद को ले जाते थे और स्वान्तः सुखाय कविताएँ भी लिखते थे। उनकी चुनिन्दा कविता के साथ एक बानगी:

मैं दुश्मन की छाया से लड़ रहा था  
कैसे भी वार करूँ  
उसका सर धड़ से अलग नहीं  
होता था  
धरती खोद डाली  
पर वह दफन नहीं होता था  
उसके पास जाऊँ  
तो मेरे ही ऊपर सवार हो जाता था  
खिसिया कर दांत कांटू  
तो मुंह मिट्टी से भर जाता था  
उसके शरीर में लहू नहीं था  
वार करते करते मैं हाँफने लगा  
पर उसने उफ नहीं की  
तभी एकाएक पीछे से  
एक अट्ठहास हुआ

मुड़ कर देखा, तब पता चला  
 कि अब तक मैं  
 अपने दुश्मन से नहीं,  
 उसकी छाया से लड़ रहा था  
 वह दुश्मन, जिसे अभी तक  
 मैंने अपना दोस्त मान रखा था।  
 मैं अपने दोस्त का सर काटू  
 या उसकी छाया को  
 दियासलाई से जला दूँ।

(यह कविता पटना में 5 जनवरी 1987 को खादीग्राम जाते हुए रास्ते में लिखी, यह वही वक्त था जब वे कांग्रेस के अंदर रहकर अपनी लड़ाई लड़ रहे थे और बोफोर्स का मुद्दा मुंह बाए था जिस पर मुखर होकर उन्होंने 89 के चुनाव में मिस्टर क्लीन की छवि की धज्जियाँ उड़ा कर रख दीं। ये और बात है कि मृत्योपरांत लंबे समय बाद राजीव गांधी बरी हो गए।)

पूर्व प्रधानमंत्री आइ. के. गुजराल ने अपनी आत्मकथा मैटर्स अॉफ़ डिस्क्रीशन में तत्कालीन प्रधानमंत्री एच. डी. देवेगौड़ा, अविभाजित जनता दल के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू प्रसाद और कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सीताराम केसरी के बीच चल रही खींचतान के दौरान युनाइटेड फ्रंट गवर्नमेंट को बचा लेने और बलवाई भाजपा को सत्ता से दूर रखने के डायलिसिस की हालत में बेड पर लाचार पड़े वीपी सिंह के जतन का तफ़्सील से उल्लेख किया है। वीपी सिंह अपनी एक कविता "इश्तेहार" में लिखते हैं:

उसने उसकी गली नहीं छोड़ी

अब भी वहीं चिपका है

फटे इश्तेहार की तरह

अच्छा हुआ मैं पहले

निकल आया

नहीं तो मेरा भी वही हाल होता।

सरकार आखिरकार गिर गई और बड़े ही नाटकीय तरीके से विदेश मंत्री गुजराल को कुछ की असहमतियों के साथ बाकी सब ने मिल कर प्रधानमंत्री स्वीकार कर लिया। वीपी सिंह की एक कविता है "मैं और वक्त":

में और वक्त

काफ़िले के आगे-आगे चले

चौराहे पर ...

में एक ओर मुड़ा

बाकी वक्त के साथ चले गये।

मौजूदा नस्ल को हर वक्त सचेत रहने की ज़रूरत है कि लोकतंत्र को कभी भी फॉर ग्रांटीड नहीं लिया जा सकता। हर दिन यह अपने नागरिकों से सतर्कता व प्रतिबद्धता की अपेक्षा रखती है। यह खुद के प्रति छलावा होगा कि जम्हूरियत अपनी हिफ़ाज़त खुद कर लेगी। लोकतंत्र की आयु के लिहाज़ से 70 साल कोई दीर्घ अवधि नहीं होती। हिन्दुस्तानी जम्हूरियत अभी किशोरावस्था से निकली ही है। पर, इतनी कम उम्र में इसने इतने सारे रोग पाल लिए हैं कि बड़ी चिंता होती है। कुपोषण के शिकार दुनिया के सबसे बड़े व कमोबेश कामयाब, गाँधी, अम्बेडकर, जयप्रकाश, नंबूदरीपाद, लोहिया, फूले, सावित्री, झलकारी, फ़ातिमा, पेरियार, सहजानंद, आदि सियासी शख्सियतों की आजीवन पूँजी व चिरटिकाऊ होने के सदृच्छाओं से अनुप्राणित इस बाहर से बुलन्द व अंदर से खोखले होते जा रहे लोकतंत्र को समय रहते इलाज़ की दरकार है।

आरक्षण, आरक्षण की ज़रूरत समाप्त करने के लिए लागू हुआ था। पर, क्या कीजें कि बड़ी सूक्ष्मता से इस देश में आरक्षण को डायल्युट किया जा रहा है और मानसिकता वही है कि हम तुम्हें सिस्टम में नहीं आने देंगे। पिछड़ों के उभार के प्रति ये असहिष्णुता दूरदर्शिता के लिहाज़ से ठीक नहीं है। केंद्र सरकार का डेटा है कि आज भी केंद्र सरकार की नौकरियों में वही 12 फ़ीसदी के आसपास पिछड़े हैं, जो कमीशन की रिपोर्ट लागू होने के पहले भी अमूमन इतनी ही संख्या में थे। आखिर कौन शेष 15 % आरक्षित सीटों पर कुंडली मार कर इतने दिनों से बैठा हुआ है? यही रवैया रहा तो लिख कर ले लीजिए कि इस मुल्क से कयामत तक आरक्षण समाप्त नहीं हो सकता।

एक चर्चा को भाजपा और ब्राह्मणवादी लोग बड़े जोर शोर से उछाल रहे हैं कि पिछड़ों का हक़ पिछड़े ही मार रहे हैं। पिछड़ों का प्रतिनिधित्व जब आज भी केंद्र सरकार की नौकरियों में सारे गुप्स मिलाकर 12% ही है, तो कौन किसकी हक़मारी कर रहा है? जबकि आरक्षण तो इस वर्ग के लिए 27% है। तो लड़ाई तो इस बात के लिए हो कि शेष 15 % पर कौन लोग नुमाइंदगी को रोक रहे हैं? पिछड़े-अतिपिछड़े के रूप में लेयरीफिकेशन (स्तरीकरण) बिल्कुल हो, किसी को एतराज़ क्यों हो! पर, उसका स्वरूप ऐसा न हो कि सीटें खाली चली जाएं जैसा मनुवादी ताकतें चाहती हैं। एक फ़ार्मुला यह हो सकता है जिससे पत्रकार जितेन्द्र कुमार पूरी तरह इत्तेफ़ाक़ रखते हैं कि जो सीटें अतिपिछड़े से नहीं भरी जा सके, उन्हें पिछड़ों से भरी जाए और जो पिछड़ों से भी खाली रह जाए, उन्हें क्रीमी लेयर से भरा जाए ताकि मूलतः पसमांदा वर्ग का कम-

से-कम 27% प्रतिनिधित्व हो सके। पिछले साल युपीएससी ने सौ से ज़्यादा सफल अभ्यर्थियों को क्रीमी लेयर में फर्जी तरीके से उलझा कर उन्हें कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगवा दिया। अभी भी राहत की खबर नहीं है।

जिसकी जितनी संख्या भारी/ उसकी उतनी हिस्सेदारी के प्रस्ताव को मानने में किनको दिक्कतें हैं? वो कौन लोग थे जिन्होंने संसद की सहमति के बावजूद जाति जनगणना में रोड़े अटकाए? प्रणव मुखर्जी व चिदंबरम ने इस कदर धोखाधड़ी की कि जाति जनगणना हुई ही नहीं। यह भी हास्यास्पद ही है कि एक सर्वे को जाति जनगणना मान कर उसके आंकड़े जारी करने की जिद हमारे नेता पालने लगे। जब उन्हें समझ में आई बात कि भारत सरकार के जनगणना आयोग द्वारा तो कभी कास्ट सेंसस कराया ही नहीं गया तो लोग ठगा हुआ महसूस कर रहे थे। देश की जनता के 4800 करोड़ रुपये भी खर्च हुए और उनके साथ छलावा भी हुआ।

आने वाले लोकसभा चुनाव में इस बात को जो दल अपने घोषणापत्र में शामिल करेंगे कि वो जनगणना आयोग द्वारा 2021 में कराई जाने वाली जनगणना में जाति गणना को शामिल करेंगे, वही इस देश की उत्पीड़ित जनता के सही मायने में हितैषी होंगे।

जाति जनगणना की जो बात करेगा

वही देश पर राज करेगा।

इस देश में गृहगणना हो जाती है, पशु गणना हो जाती है, मगर जाति जनगणना नहीं होती। भेड़-बकरी-गाय-भैंस-गदहा-सुअर की तो गिनती होती है, पर आपकी गिनती नहीं होती। इसके पीछे के डर और साज़िश को समझिए। जैसे ही सही आबादी सामने आएगी, दलितों-आदिवासियों का राजनैतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाना पड़ेगा। वो अक्लियतों की सही जनसंख्या सामने नहीं आने देना चाहते।

70 के दशक में हमारे देश की आबादी लगभग 60 करोड़ थी और केंद्र सरकार की नौकरियों में वो 4 लाख दलित-आदिवासी थे। आज देश की आबादी 125 करोड़ के आसपास है, मगर इन वर्गों की नुमाइंदगी करने वाले मात्र 1.5 लाख हैं। जब मंडल लगा, उसी समय उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण की आंधी कांग्रेस ने चलाई और सरकारी नौकरियाँ उस सुनामी में उड़ गईं।

इतना ही नहीं, जिस नीट की सीट 28 हजार है, वहाँ ओबीसी के नाममात्र लोग आ पाये हैं इस बार। क्या तमाशा बना के रखा है देश को!

आरक्षण खत्म करने की दिशा में पहला कदम सरकार उठा चुकी है। संयुक्त सचिव स्तर के दस अधिकारियों की यह बिना परीक्षा लिए सीधी भर्ती करेगी। दिलीप मंडल विस्तार से बताते हैं कि ऐसा करके सरकार संविधान के कई अनुच्छेदों का सीधा उल्लंघन कर रही है। अनुच्छेद 15 (4) का यह सीधा



उल्लंघन है, जिसमें प्रावधान है कि सरकार वंचितों के लिए विशेष प्रावधान करेगी। अनुच्छेद 16 (4) में लिखा है कि सरकार के किसी भी स्तर पर अगर वंचित समुदायों के लोग पर्याप्त संख्या में नहीं हैं, तो उन्हें आरक्षण दिया जाएगा। ज्वायंट सेक्रेटरी लेबल पर चूंकि SC, ST, OBC के लोग पर्याप्त संख्या में नहीं हैं, इसलिए उनकी नियुक्ति में आरक्षण न देने का आज का विज्ञापन 16 (4) का स्पष्ट उल्लंघन है।

अनुच्छेद 15 और 16 मूल अधिकार हैं। यानी भारत सरकार नागरिकों के मूल अधिकारों के हनन की अपराधी है।

इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 315 से 323 में यह बताया गया कि केंद्रीय लोक सेवा आयोग यानी UPSC होगा, जो केंद्र और राज्य सरकार के अधिकारियों को नियुक्त करेगा।

अनुच्छेद 320 क्या कहता है? Functions of Public Service Commissions का जिक्र है:

It shall be the duty of the Union and the State Public Service Commissions to conduct examinations for appointments to the services of the Union and the services of the State respectively.

ऐसे में सरकार UPSC को बाइपास करके और बगैर किसी परीक्षा और आरक्षण के अफसरों को सीधे नीतिगत पदों पर नियुक्त कैसे कर सकती है?

इसलिए, इस बेहया सरकार की ईट से ईट बजा देने का समय है, शालीनता-शिष्टाचार-संसदीय मर्यादा, वगैरह इसके सामने वक़्त ज़ाया करने के सामान हैं, इन्हें झटक दो, सर से पटक दो। जो लोग निष्पक्षता का उपदेश झाड़े, उसे झाड़ के रख दो। अभी जो बुजुर्ग महिलाएं इनके कपड़े फाड़ रही हैं, वो आगे चलके इनके मुंह ईट से थकुचेंगी। और, हम-आप क्या करेंगे, यह अब भी न तय किये तो कब करेंगे? एड हॉक का लोभ है, मत कीजिए। बोलिए, लिखिए, जाइए लोगों को बताइए कि कितनी बदमाश और अपराधी सरकार है जो आपके मौलिक अधिकारों को कुचल रही है।

अमेरिका में भी दबे-कुचले समुदाय के लोगों की ज़िन्दगी संवारने व उन्हें मुख्यधारा में लाने हेतु अफरमेटिव एक्शन का प्रावधान है और वहाँ इसके प्रतिरोध में कभी कुतर्क नहीं गढ़े जाते। अर्जुन सिंह ने 2006 में उच्च शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर मंडल को जो विस्तार दिया था, उसमें पत्नीता लगा दिया गया है। विनाशकारी युजीसी गज़ट का हवाला देकर विश्वविद्यालयों में भारी सीट कट का फरमान सुनाया गया। तत्कालीन शिक्षा मंत्री अर्जुन सिंह के सदप्रयास से उच्च शैक्षणिक संस्थानों में अभी तो पिछड़ों-पसमांदाओं के लिए इस आरक्षण को लागू हुए बमुश्किल 10 साल हुए हैं, और और अभी से कुछ लोगों की भृकुटि तनने लगी है।

इस साल 62 संस्थानों को 'स्वायत्त' घोषित कर उन्हें आर्थिक रूप से पंगु और कमज़ोर वर्गों के लिए शोषणकारी बना दिया गया। यह धीरे-धीरे संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को निजी हाथों में सौंप देने की साज़िश है। प्रफेसर्स की बहाली के लिए जो पहले 200 प्वाइंट्स रोस्टर सिस्टम लागू था, उसे 13 प्वाइंट्स रोस्टर

सिस्टम में तब्दील कर दिया गया। विश्वविद्यालय को इकाई न मान कर विभाग को इकाई माना जा रहा है और इस तरह हर वो तरीके ईजाद किये जा रहे हैं जिससे आरक्षण लागू न होने पाए जबकि संविधान की मूल भावना यह है कि हर वो तरीका अपनाना है, टूटना है जिससे अफ़र्मेटिव एक्शन लागू किया जा सके। अब अगर किसी विभाग में एक साथ 7 लोगों की बहाली न हो तो दलित का नंबर ही नहीं आएगा, 14 पोस्ट एडवर्टाइज़ न हो तो आदिवासी की बारी ही नहीं आएगी और एक मुश्त 4 पोस्ट विज्ञापित न हों तो कोई पिछड़ा प्रफ़ेसर साहब नहीं बन पाएगा। यानी एक तरह से इंडियन एज्युकेशन सिस्टम का कंप्लीट गलगोटियाइज़ेशन, लवलियाइज़ेशन, अशोकाइज़ेशन, अमिटियाइज़ेशन और नाडराइज़ेशन हो गया है।

अगर बीएन मंडल, बी. पी. मंडल, कर्पूरी ठाकुर, जगदेव बाबू, वी. पी. सिंह, अर्जुन सिंह एवं उस वक़्त के संघर्ष के अपने जांबाज योद्धाओं को सच्चे अर्थों में हम याद करना व रखना चाहते हैं, तो हमें निकलना ही होगा सड़कों पर, तेज़ करने होंगे व बदलने भी पड़ेंगे प्रतिरोध के अपने औजार। आज जब बड़ी बारीकी, चतुराई व चालाकी से आरक्षण को डायल्युट किया जा रहा है, तो क्या आरक्षण बचाने के लिए लालू प्रसाद सरीखे नेता को फिर किसी रामजेठमलानी को वकील करना पड़ेगा या योद्धा सड़क पर उतरें!

20 अप्रैल को संविधान बचाओ मुहिम के तहत डीयू गेट पर हुए सामाजिक न्याय युवा सम्मेलन और एमएचआरडी पर धरना के समर्थन में बिहार के पूर्व उपमुख्यमंत्री तेजस्वी यादव ने बहुत संजीदा संदेश भेजा जिसे सम्मेलन में मैंने पढ़ा। संदेश कुछ यूँ है:

"इस मुल्क में सामाजिक न्याय और समानता के दस्तावेज संविधान के निर्माता बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने कहा था "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो"। ये इस देश की त्रासदी ही है कि जिस RSS ने ये कहा था कि हम संविधान को नहीं मानते क्योंकि इसे एक अछूत (अम्बेडकर) ने बनाया है, वो लोग आज सत्ता में है और संविधान के जरिए बाबा साहब द्वारा दिए गए आरक्षण को नागपुर के संघ मुख्यालय से चलने वाली ये सरकार विश्विद्यालयों और पूरी उच्च शिक्षा से खत्म करने पर तुली हुई है। 1990 के बाद जब इस देश के वंचितों और शोषितों के पढ़ने का वक़्त आया, तब कमंडल की राजनीति करने वालों ने इस मुल्क में शिक्षा के सवाल को हटाकर देश और समाज को धर्म की आग में झोंकने की कोशिश की क्योंकि वो संघी सोच वाले लोग चाहते ही नहीं थे कि ग़रीब पढ़ पाएं।

5 मार्च को अस्सिस्टेंट प्रफ़ेसर की बहाली को लेकर UGC का आदेश तो विरोध को नापने का संघी तरीका है, असल साज़िश तो पूरी आरक्षण व्यवस्था को खत्म करने की है।।

यहाँ मैं आप सबों को याद दिला दूँ कि जब अक्टूबर 2015 में बिहार में चुनाव हो रहे थे, तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक और मोदी सरकार के आका मोहन भागवत ने बयान दिया था कि "आरक्षण पर पुनर्विचार करना है, यानी कि इस मुल्क के ग़रीबों और वंचितों का आरक्षण समाप्त करना है"। तब बिहार की जनता और लालू जी ने संघ और भाजपा को ऐसा सबक सिखाया और ग़रीबों की

आवाज़ बने कि पूरे बिहार से इन संघियों का राजनीतिक खात्मा हो गया। उसके बाद ही गरीबों की लड़ाई को मज़बूती से लड़ने की वजह से लालू जी को कैद में दमनकारी तरीके से रखा जा रहा है। सरकार में बैठे लोग ये नहीं चाहते हैं कि गरीब पढ़े क्योंकि वो पढ़कर अपना हक मांगेंगे, ये सरकार वंचितों को उनका मौलिक हक तो नहीं ही देगी और साथ ही उनके हक की आवाज़ बुलंद करने वालों का हाल लालू जी की तरह करेगी। बिहार से लेकर गुजरात तक और JNU से लेकर HCU तक एक ही चीज समान है, वो है- सही की बात करने वालों का दमन ।

नेहरू कहते थे, "University should be the place for adventure of Ideas"। लेकिन ये बहुत दुख की बात है कि विश्विद्यालय में विचारों को दक्षिणपंथी फ़ासीवादियों द्वारा विश्विद्यालय प्रशासन के जरिये कैद किया जा रहा है। आज वक़्त की जरूरत है कि हम सब अपने छोटे-मोटे मतभेद दरकिनार कर उच्च शिक्षा को नेस्तनाबूद करने की साजिश करने वाली सरकार को वैसा जवाब दें जैसा 2015 में लालू जी ने दिया था। इसके लिए हम सब अमनपसंद और गैरबराबरी के खिलाफ़ संघर्ष को प्रतिबद्ध लोगों को एक साथ आना होगा।

हमलोगों में कोई वामपंथी हो सकता है, कोई अम्बेडकरवादी, कोई समाजवादी, कोई नेहरूवादी और कोई लोहियावादी, लेकिन हम सब नागपुर के संघी फासीवाद के विरोधी हैं और याद रखिए कि एकता में बल है और हम सब को इस मुल्क के अस्तित्व पर आए संकट से मिलकर ही निपटना होगा।।

जय भीम, जय बहुजन!

जय मंडल, जय हिंद!"

मुझे हैरत होती है गोल-गोल घुमाने वाले मित्रों की ज़हनियत पर। मालूम हो कि अमेरिकी मीडिया हायली कॉर्पोरेटाइज़्ड है, मगर वहाँ अफ़र्मेटिव एक्शन का प्रावधान फोर्थ इस्टेट तक में है ताकि न्यूज़रूम डायवर्सिटी बनी रहे। आप यहाँ उपदेश देते रहिए। कुछ भी चर्चा कीजिए तो एक ही राग कि सारे सवर्ण एक जैसे नहीं हैं। अरे भैया, कौन कह रहा है कि सब धन बाइस पसेरी है! पर, चर्चा आप किसी मुद्दे पर कीजिए और लोग डायवर्ट करके कहीं और लेके चले जाते हैं। उस पर तुरा ये कि जातपात से ऊपर उठने की नसीहत दे डालते हैं।

और जो लोग ये तर्क देते हैं कि दबे-कुचलों की बात करने के चलते उनका अगड़ा समाज भी उन्हें दुत्कार देता है, वो न इधर के रह पाते हैं न उधर के; तो मानिए कि यह बस आपके साथ नहीं होता। सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व की बात करने वाले उपेक्षितों को भी उनका 'समाज' बैलाने को उद्यत रहता है क्योंकि वो बार-बार धोखा नहीं खाना चाहता। उनके आक्रोश को समझने के बजाय हुथियाड़िएगा, तो उनके क्रोध की आग और भड़केगी। प्रेम और विश्वास से ही समाज आगे बढ़ेगा, चालाकी-धूर्तता-तिकड़म-उकसावे के सहारे किसी का भरोसा नहीं जीता जा सकता। और अक्ल तो ये कि चिकनी चुपड़ी बातें करके समस्या को

ढकने के बजाय आप क्या कर रहे हैं अपने स्तर से, यही देखा जाएगा। एक शख्स के बारे में पता चला कि अपने चैनल में चुन-चुन के सजातीय और बाकी 'अगड़े' लोगों को भर दिया, और आप बात करते हैं नैरेटिव की। कौन क्या कर रहा है बंद कमरे में, लोगों को पता नहीं चलता क्या। पर, जो ही बचीखुची आवाज़ें हैं, उन्हीं में से कुछ बात बनेगी।

इन्हीं ज़रों से होंगे कल नये कुछ कारवाँ पैदा

जो ज़रें आज उड़ते हैं गुबारे-कारवाँ होकर।

ज्ञानियों-ध्यानियों द्वारा जातिवादी कहलाने के भय से मुक्त होकर उनसे बगैर किसी सर्टिफिकेट की आकांक्षा के आज मुहामुंही ही नहीं, भिड़ाभिड़ी करने का वक़्त है। किसी को जातिवादी करार देने से पहले आइने में वो अपनी सूरत देख लें या नोयडा की मंडी में घूम आएं। एक सर्वे यहाँ रख रहा हूँ और हां, ये सर्वे कोई मेरा नहीं, बल्कि अनिल चमाड़िया, जितेन्द्र कुमार और योगेन्द्र यादव का है। तो, मुझे लेबल करने के पूर्व अपने क्षेत्र के इन दिग्गजों के काम पर भी एक नज़र डालने की जहमत कर ली जाए।

जिसे आप मेनस्ट्रीम मीडिया कहते हैं, वह दरअसल मनुस्ट्रीम मीडिया है। रोबिन जॉफ़री ने भारतीय पत्रकारों के ऊपर सर्वे में पाया कि "अधिकांश पेशेवर पत्रकार 'ऊंची जातियों' से आते हैं। यह अकारण नहीं है कि गरीबों और दलितों के हित पब्लिक डिस्कशन के एजेंडे में कभी-कभार ही रहते हैं"। जून 2006 में योगेन्द्र यादव, अनिल चमाड़िया और जितेंद्र कुमार द्वारा किया गया रिसर्च इस बात की ताक़ीद करता है कि किस कदर समाचारकक्ष विविधता (न्युज़रूम डायवर्सिटी) का घनघोर अभाव है। Newsroom Employment Diversity Survey (Newsroom Employment Census) एक बार हो जाए कायदे से, तो आप चकरा जाएंगे। 37 अंग्रेजी और हिंदी के अख़बार व टीवी चैनल्स के 315 पत्रकारों के सर्वे में पाया गया कि ऊंची जातियां जिनकी आबादी इस देश में अनुमानतः 16 % है; के पत्रकार राष्ट्रीय मीडिया के डिजीजन मेकिंग में कुल 88 % (ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, खत्री - 86 %; मराठा, जाट, रेड्डी - 2 %) हैं, जिनमें सिर्फ़ ब्राह्मण (भूमिहार, त्यागी को मिलाकर) 49 फ़ीसदी है।

एससी, एसटी समुदाय का एक भी पत्रकार इस डिजीजन मेकिंग का हिस्सा नहीं है। 43 % आबादी वाले ओबीसी का प्रतिनिधित्व मात्र 4 % है। 13.4 फ़ीसदी मुसलमानों की नुमाइंदगी 4 % है। 2.3 प्रतिशत आबादी वाले क्रिश्चियन नेशनल मीडिया में 4 % हैं। महिलाएं 17 प्रतिशत हैं निर्णय लेने की प्रक्रिया में, और इंग्लिश मीडिया में वे 32 प्रतिशत हैं।

तो यह है हमारे लोकतंत्र की प्रहरी खबरपालिका के अंदर का समाजी सच जिस पर बात शुरू हो तो संभ्रांत लोग ऐसे नाक पर रूमाल रखते हैं मानो वो गंदी गली से गुज़र रहे हों और हमने कर दी हो कोई गंदी-घिनौनी बात। मीडिया की मंडी सचमुच घिनौना रूप अखिल्यार कर रही है जहाँ भाई-भतीजावाद और जातिवाद सर चढ़ कर बोलता है। दूसरी बात यह बिकाऊ कतई नहीं है। इसे कोई दलित-आदिवासी-

पिछड़ा-पसमांदा-अक्लियत दुनिया की किसी टकसाल से नहीं खरीद सकता। ब्रह्ममीडिया को सिर्फ मनुवादी लोग संचालित-निर्देशित-नियंत्रित करते हैं।

जो लोग रात-दिन आरक्षण के खिलाफ आग उगलते हों, जिन्हें इस अखंड देश के पाखंड से भरे खंड-खंड समाज की रती भर समझ न हो, उनसे मगजमारी करके अपना बेशकीमती वक्त क्यों ज़ाया किया जाये ? ऐसे लोगों की सोची-समझी, शातिराना बेवकूफी व धूर्तता की अनदेखी करें। न वो खुद को बदलने को तैयार हैं, न ही हो रहे बदलाव को कुबूल करने को राज़ी। इसलिए, जो भी समय पढ़ाई के बाद बचे, उसे वंचित समाज की जागरूकता, बेहतरी, उसकी शिक्षा व उसके उन्नयन के लिए लगाएं, तभी "पे बैक टू सोसायटी" की संकल्पना पूरी होगी। यही असली सुकून व संतोष देगा।

## सबकी बात

# सबरीमाला पर उदारपंथी दलीलों के खतरे

टी.एम. कृष्णा

केरल के लिबरल लोगों को समझने के लिए सबरीमाला प्रकरण हमारा नया औज़ार हो सकता है। सबरीमाला विवाद पर कांग्रेस के सांसद शशि थरूर और पूर्व विदेश सचिव निरुपमा मेनन राव की दलीलों में निहित बौद्धिक खोखलापन एक बार निरीक्षण और पड़ताल की मांग करता है।

थरूर बड़ी खतरनाक बात कह रहे हैं कि "संवैधानिक सिद्धांतों की अमूर्त तत्वों को भी सामाजिक स्वीकार्यता की परीक्षा से गुज़रना होता है।" अधिवक्ता सुहरित पार्थसारथी इस पर कहते हैं, "यह फैसला समानता के अमूर्त तत्वों पर आधारित नहीं था। इसके बजाय, यह फैसला संविधान द्वारा प्रदत्त अमूर्त गारंटियों को अर्थ प्रदान करता है।" यदि तीन तलाक पर अदालत के फैसले के खिलाफ रूढ़िपंथी मुसलमान सड़कों पर उतर आए, तो क्या थरूर उस पर भी पुनर्विचार करने की सलाह देंगे? मुझे तो इस बात का भय है कि यदि अयोध्या पर अदालती फैसला उनके मन मुताबिक नहीं रहा तो कल को वे किस पाले में खड़े होंगे।

सुप्रीम कोर्ट को अपनी राय कायम करने के लिए रहस्यमय तत्वों और प्रथाओं को संज्ञान में नहीं लेना चाहिए और वह ऐसा करता भी नहीं है। उसे लोक संस्कृति की बेशक फिक्र है लेकिन हर संस्कृति या आस्था को भारतीय संविधान की चलनी से होकर गुज़रना पड़ेगा। भारतीय संविधान इस अर्थ में एक सांस्कृतिक दस्तावेज़ है कि उसकी नीयत, उसके सिद्धांतों, उसकी घोषणाओं और दिशानिर्देशों के भीतर ही उस जनता का ताना-बाना निहित है जो मिलकर इस भूमि को रचती है। इसीलिए उसकी सीमाएं भी हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आपत्तियों से तय होती हैं। संविधान निर्माताओं ने मूलभूत अधिकारों के आईने में आदर्श भारत का अक्स देख पाने की उम्मीद की थी। वे और हम एक ऐसे भारत का सपना देखते हैं जहां हर किस्म का भेदभाव और अलगाव समाप्त हो जाएगा। संविधान कोई पत्थरदिल, भावनाहीन दस्तावेज़ नहीं है। यह एक ऐसी संजीदा कारीगरी है जिसके भीतर मनुष्य के उत्थान का उद्देश्य निहित है।

इसीलिए अदालत को भारतीय नागरिकों के प्रति पूरी सतर्कता, करुणा और सहानुभूति के साथ प्रतिक्रिया देनी चाहिए, खासकर उन्हें ध्यान में रखते हुए जो भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार हैं और ऐसा करते हुए समाज के बहुसंख्य की उत्तेजना को दरकिनार कर देना चाहिए। इसे इस तरह से समझें कि यदि अय्यप्पा

का आशीर्वाद लेने की प्रक्रिया में 10 से 50 वर्ष की ऐसी महिलाओं पर अन्यायपूर्ण पाबंदी आयद हो जाती हो जो उनके आशीष की आकांक्षी हैं, तो सबसे पहले उनके आशीर्वाद को ही कोने में रख देना होगा। हिंदू परंपरा में भक्ति केंद्रीय तत्व है। आराध्य देव के प्रति पूर्ण समर्पण से ज्यादा पवित्र कुछ नहीं होता। अयप्पा को इस ताकत के आगे झुकना ही होगा। सुप्रीम कोर्ट के 28 सितंबर के फैसले के यह अनुकूल भी होगा। वह एक अद्भुत फैसला था जिसने हमें अपने संविधान निर्माताओं की भव्य दृष्टि का अहसास कराया। जस्टिस डी.वाइ. चंद्रचूड़ ने उसी नज़रिये को इन शब्दों में सामने रखा कि “महिलाओं को पूजा के अधिकार से वंचित करने के लिए धर्म को आड़ नहीं बनाया जा सकता है।”

कांग्रेस और थरूर केरल में खतरनाक बाज़ी खेल रहे हैं। समाज के एक तबके का दमन करने के लिए आप जो दलीलें दे रहे हैं, वही दलीलें जब बीजेपी देगी तब हल्ला मत करिएगा। आपका यह दोहरापन आगे बहुत भारी पड़ेगा।

थरूर की टिप्पणी के तुरंत बाद राव ने सिलसिलेवार कई ट्वीट किए। उन्होंने तर्क दिया कि हमें अयप्पा और उनकी पुरुष शुद्धिकरण, आत्मनियंत्रण व परिवर्जन की दुनिया को जस का तस छोड़ देना चाहिए। चौंकाने वाली बात यह है कि दलितों का मंदिर प्रवेश वर्जित किए जाने के पीछे वे उच्च जाति का वर्चस्व गिनाती हैं लेकिन सबरीमाला में महिलाओं को वर्जित किए जाने के पीछे वे अयप्पा की मिथकीय परंपरा गिनाते हुए उसे स्वीकार्य बताती हैं। क्या यह वही ‘पवित्रता’ नहीं है जो दलितों को मंदिरों में नैशिक ब्रह्मचर्य के नाम पर घुसने से रोकती है? आज भी रजस्वला महिलाओं को पूजाघरों में घुसने से रोका जाता है। इसे सही ठहराने और भय का माहौल कायम करने के लिए सकारात्मक/नकारात्मक ऊर्जा व शुद्धता के हवाई तर्क दिए जाते हैं, जो कि दरअसल हमारी भेदभावपूर्ण प्रथाओं, किंवदंतियों, सामाजिक कर्मकांडों, ग्रंथों और दस्तावेजों का परिणाम है।

राव ने आगे लिखा, “तीर्थयात्रा के दौरान पुरुष अपने वर्ग और सामाजिक पदानुक्रम का अतिक्रमण कर के एक हो जाता है जबकि औरतों को एक दैवीय बहनापे में अलग छोड़ दिया जाता है।” सभी जाति के लोग सबरीमाला जाते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उससे जाति समाप्त हो जाती है। इस दलील के हिसाब से देखें तो फिर हर मंदिर ही जातिविहीन हुआ क्योंकि आज समाज के हर तबके के लोग पूजा-अर्चना और तीर्थ करते हैं। हम सब अच्छे से जानते हैं कि यह बात पूरी तरह से झूठी है। अधिकतर मंदिर अपनी परंपराओं, कर्मकांडों, नियंत्रण अधिकारों और संगठन के मामले में अनिवार्यतः जातिवादी हैं। और इस संदर्भ में “बहनापा” तो पूरी तरह पितृसत्तात्मक है।

वे अपनी दलीलों के केंद्र में अयप्पा के ब्रह्मचर्य को रखती हैं और यह भूल जाती हैं कि यदि अयप्पा को वे यह अधिकार दे रही हैं तो भक्त को भी उसकी प्रकृति पर सवाल खड़ा करने का उतना ही अधिकार है।

बहुत जल्द ऐसा होगा कि हर धर्म के रूढ़िपंथी और हिंदू कट्टरपंथी अलग-अलग संदर्भों में परंपरा के ऐसे ही तत्व गिनवाकर गलत को सही मनवाने लगेंगे। यह इत्तेफ़ाक नहीं है कि कट्टर इस्लामिक समूह भी अब सबरीमाला पर हो रहे प्रदर्शनों के पक्ष में उतर आए हैं।

अब चाहे जो हो, लेकिन थरूर और राव ने केरल के समाज में निहित जातिवाद और पितृसत्ता को उघाड़ कर रख दिया है। नारायण गुरु और अयंकलि जैसे समाज सुधारकों ने मलयाली समाज में गहरे जड़ जमाए इस जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ संघर्ष किया था- आरक्षण की कामयाबी और सामाजिक विकास के सकारात्मक सूचकांक इस बात का सबूत हैं कि उन्होंने जाति प्रथा को पर्याप्त चोट पहुंचायी थी। इसके बावजूद अभी बहुत सा काम बाकी है, यह आज उच्च जातियों की ओर से मचाए जा रहे हो हल्ले से स्पष्ट हो रहा है। जातिवाद दरअसल हम सब के भीतर खुद को छुपाए रखता है और ऐसे ही मौकों पर निकल कर बाहर आ जाता है। पितृसत्ता और पुरुष वर्चस्व ही वह बुनियाद है जिस पर जाति अपना काम करती है। केरल इस मामले में अपवाद नहीं है।

थरूर ने जिस भ्रामक तरीके से सबरीमाला मुद्दे पर अपने पूर्वग्रहों को हवा देने की कोशिश की है, वह संविधान की उपेक्षा है। उन्हें अपने भीतर अवचेतन स्तर पर स्वीकृत जातिवाद और पितृसत्ता की खुद पड़ताल करनी चाहिए। सबरीमाला को मिथकीय स्रोत से पुरुष जगत के आत्मशुद्धिकरण का परिक्षेत्र बताने वाली राव को उन तमाम दूसरे क्षेत्रों पर नज़र डालनी चाहिए जहां औरतों ने चुनौती खड़ी की है और कामयाब रही हैं। औरतो को इन तमाम जगहों पर रोकने के लिए हमेशा से ही कोई न कोई पराभौतिक या सामाजिक व कर्मकांडीय बंदिशें मौजूद रही हैं। उच्च जाति की लिबरल नारीवादियों के लिए नारीवाद के विचार में सुविधाजनक कतर-ब्योंत कर चुनने और छांटने काम बड़ा आसान होता है।

गतिविधि के हर क्षेत्र को नारीवादी प्रस्थान-बिंदु से प्रश्नांकित किया जाना चाहिए, फिर चाहे वह धर्म ही क्यों न हो। प्रतिबंधात्मक व्यवहार की पड़ताल होनी चाहिए। इतना तो तय है कि परमपिता ईश्वर भी यही चाहता होगा कि हम सब सवाल करने वाले संजीदा प्राणी बनें। हिंदू होने का कोई और अर्थ होता है क्या?

(दि हिंदू से साभार)



## दशहरे के बाद की जंग

प्रताप भानु मेहता

विजयादशमी (दशहरा) को प्रतीक और यथार्थ दोनों ही संदर्भों में शक्ति का पर्व माना जाता है। रावण का वध हो चुका है। सीता को छुड़ाया जा चुका है और मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपना वनवास समाप्त कर के लौट रहे हैं। तमाम भारतीय ग्रंथों को देखें तो हम पाएंगे कि विजय का पर्व दरअसल एक परदा है। इस परदे के पीछे यानी विजयोत्साह के सार्वजनिक महोत्सव के बाद जो घटता है, वह अप्रिय है। आम तौर से महाभारत के मामले में ऐसा स्वीकार किया जाता रहा है कि कौरवों पर पाण्डवों की विजय के बाद बड़े पैमाने पर मारकाट हुई और जनता को अप्रत्याशित पीड़ा झेलनी पड़ी थी। यहां तक कि इस कथा में वर्णित उद्धारकों भी तुच्छ मौत झेलनी पड़ी। मनुष्य की नियति अश्वत्थामा सी हो गई जिसे अस्तित्व के समंदर में बिना किसी उम्मीद या मुक्ति की संभावना के एक अंतहीन यात्रा करनी है। यही कारण है कि अमरत्व को अभिशाप मानते हैं।

रामायण भी अपने विजयपर्व पर कम विषादपूर्ण नहीं है। महाभारत में द्वेष और पिछले कर्मों का मिलाजुला बोझ भविष्य पर इतना भारी पड़ जाता है कि आप जान रहे होते हैं कि इससे राहत का एक पल भी कागज़ की नाव के जितना नाजुक है जो नियति के सैलाब में एक झटके में बह जाएगा, जहां नियति तहदार पापों की एक गठरी है। रामायण में विजय के ऐसे क्षण और ज्यादा विषादपूर्ण इसलिए जान पड़ते हैं क्योंकि राम अपने आप में मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, बावजूद इसके उनके नेतृत्व में प्राप्त विजय एक त्रासदी में परिणत हो जाता है।

इस त्रासदी के केंद्र में सीता हैं। दरअसल, रामायण में राम-रावण के युद्ध को अतिरिक्त प्रमुखता दी गई है। यह युद्ध ही जनता की उम्मीदों का स्थल है, मुक्ति का क्षण है। यदि आप राम और सीता की प्रेमकथा के चौखटे में देखें तो यह युद्ध एक गौण प्रसंग से ज्यादा कुछ नहीं लगेगा। युद्ध में विजय के बाद जो घटता है, जिसे उत्तरकांड में वर्णित किया गया है, वह इस ग्रंथ में व्याप्त विषाद के लिहाज से केंद्रीय महत्व रखता है। इस आख्यान के हिसाब से रामायण ठीक उलटा अर्थग्रहण कर लेता है: बुराई पर अच्छाई की जीत नहीं बल्कि अन्याय की स्थायी जीत। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का साक्षात्कार एक ऐसे अचल अन्याय के साथ होता है कि उनका कद छोटा हो जाता है।

विजयादशमी अवसादपूर्ण क्षण है क्योंकि असल और गहन पाप तो अब सतह पर आएगा, जब रावण के ऊपर राजनीतिक विजय का लक्ष्य पूरा कर लिया जाएगा। अब सीता के खिलाफ महान अन्याय का सिलसिला शुरू होगा जबकि राम जानते हैं और हर कोई जानता है कि सीता ने ऐसा कुछ भी नहीं किया है कि उन्हें अन्याय भोगना पड़े। इसका मनोवैज्ञानिक पक्ष तो और बुरा है: रावण ने तो बस सीता का हरण किया था लेकिन अब उन पर लगातार दोष मढ़ा जा रहा है। उन्हें निरंतर अपमानित किया जा रहा है जिससे उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हो रही है और बहुत संभव है कि दोषारोपण करने वाले बेरहमी से उन्हें इसका दंड दे देंगे। उनके साथ जैसा बरताव हो रहा है, वहां हर मर्यादा तार-तार हो जा रही है। राम ने तो 'अशुद्ध' अहिल्या तक का उद्धार कर दिया था लेकिन यहां तो शुद्धता के प्रतिमान को ही दंडित किया

जा रहा है। जिस मुक्तिदाता को हर किसी का उद्धार करना था, उसने न्याय को उलटा धर दिया है। यह दंड एक राजसिद्धांत के तहत तामील किया जा रहा है। राम अब केवल राजा हैं। वे अपनी प्रजा का भरोसा वापस पाना चाहते हैं। इस प्रजाधर्म के लिए वे सब कुछ त्याग देते हैं। वास्तव में यहां कोई धर्म नहीं है क्योंकि उन्होंने वनवास का फैसला प्रजा की मर्जी से नहीं किया था, लिहाजा प्रजा के दावे को यहां बहाना नहीं बनाया जा सकता। सीता भी एक अन्यायपूर्ण सुनवाई से गुजर चुकी है, बावजूद इसके अफवाहों और अतिरंजनाओं के आगे न्याय की प्रक्रिया हार रही है। उनके साथ आपराधिक मानहानि की जा रही है और उन पर आरोप लगाने वाले इसमें हो रहे अन्याय से गाफिल हैं। धर्म को यदि जनधारणा का बंधक बना दिया जाए तो धर्म की परिभाषा दूषित हो जाएगी। ऐसे में ही राम एक कायर के रूप में हमारे सामने आते हैं जो सीता की आंखों में देखने का साहस तक नहीं जुटा पाते और छल से उन्हें निर्वासित करवा देते हैं। बावजूद इसके सीता के प्रति राम की निजी प्रतिबद्धता पर कोई सवाल नहीं है। राम भी उसी पीड़ा से गुजरते हैं लेकिन वे न्याय नहीं कर पाते।

सीता का निर्वासन इस ग्रंथ का एक असंगत मोड़ है। राम और रावण की लड़ाई में अच्छे और बुरे की पहचान करना बहुत आसान है लेकिन संस्कृति के एकमुश्त भार में निहित बुराई के तत्व को पकड़ पाना और उसका साक्षात्कार करना तकरीबन असंभव काम है। राम को अपने सत्य में भरोसा नहीं है। सीता को त्यागते वक्त वे उन पर आरोप मढ़ते हैं। दोषमुक्त हो जाने के बाद वे पलट कर कहते हैं कि सीता के सार्वजनिक रूप से दोषमुक्त दिखने के लिए ऐसा करना जरूरी था। इस तरह सीता के अन्यायपूर्ण मुकदमे की आड़ में राम खुद को छुपा लेते हैं और बाद में वाल्मीकि की गवाही भी उनके लिए ओट का काम करती है। सीता खुद को निर्दोष साबित कर के भी दोषी रह जाती है। उसपर आरोप लगाने वालों ने भले कुछ न साबित किया हो, लेकिन वे ही सही माने जाते हैं।

वो तो वाल्मीकि की महानता रही कि उन्होंने इन सवालों को अधर में छोड़ दिया। नतीजे पर कहीं कोई मुलम्मा नहीं चढ़ाया। राम और उसके मानव अवतार के बीच फर्क कर के कोई ईश्वरीय खेल करने की कोशिश नहीं की। बाद में कई लेखकों ने, जैसे कि भवभूति और दिंगांग ने अंत को ज्यादा नाटकीय बना दिया: राम और सीता का मेल हो गया, क्योंकि अलगाव अपने आप में प्रेम की हार को साबित कर देता। सुखांत वाले इन नाटकों के बावजूद नैतिक द्वंद्व का कोई हल वास्तव में मौजूद नहीं है। राम पूरी तरह दोषमुक्त नहीं हुए। सीता उन्हें निष्ठुर कहती ही रही। इन नाटकों में राजा राम की गलती बताने के बजाय लोक को ही निरंकुश करार दिया गया है। यहां लोक का अर्थ जनता से नहीं बल्कि लोक की संस्कृति से है, उसकी कसौटियों से है। रावण को तो राम ने मार दिया लेकिन वे संस्कृति की कसौटियों से नहीं लड़ पाए। इसके लिए उन्हें बाहर से कवियों और संतों की मदद लेनी पड़ी।

इस प्रक्रिया में सत्य के समक्ष राम एक निराशाग्रस्त आत्मसंदेह की प्रतिमूर्ति बनकर उभरते हैं। वाल्मीकि की सीता सत्य के प्रश्न का स्थायी समाधान कर उन्हें इस दयनीयता से हमेशा के लिए मुक्त कर देती है। वह अपनी मां धरती की गोद में लौट जाती है। इस दुख से राम टूट जाते हैं। रावण से सीता को मुक्त कराना आसान था लेकिन सीता के सत्य को सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त करना, जनधारणाओं के बोझ से उबारना राम के लिए तकरीबन नामुमकिन था। ये सांस्कृतिक कसौटियां इतना निष्ठुर हैं कि ये सब कुछ को सिर के बल खड़ा कर देती हैं। न्यायिक प्रक्रिया अन्याय में तब्दील हो जाती है, आरोपी आरोपित में। धार्मिक संदर्भ में देखें तो राम और सीता एक-दूसरे के बगैर अपूर्ण हैं लेकिन लोक संस्कृति

में निबद्ध लैंगिक कसौटी के चलते उनका मिलन असंभव हो जाता है। कहानी जहां आकर रुकती है, ऐसा लगता है गोया वाल्मीकि कह रहे हों: विजयादशमी को खत्म हुई जंग तो महज दिखावा थी, इसके बाद वाली जंग सीता को अकेले ही लड़नी होगी क्योंकि राम जैसा कोई उद्धारक यहां नहीं है जो उनकी जंग लड़े। परंपरागत सत्य सीता के साथ नहीं है। सीता एक दिन कोई कदम उठाएगी, तब एक झटके में सारे सच अप्रासंगिक हो जाएंगे।

*(इंडियन एक्सप्रेस से साभार)*

## में नहीं मानता कि इंडियन स्टेट और डेमोक्रेसी बुर्जुआ के हाथ में चले गए हैं

पी. साइनाथ

अंग्रेजी के पत्रकार पी. साइनाथ ने 22 जून 2018 को एक लेख लिखकर देश भर के किसानों से आह्वान किया था कि वे भारी संख्या में दिल्ली की ओर कूच करें और संसद के बाहर डेरा डालकर कृषि संकट पर तीन हफ्ते का एक विशेष संसदीय सत्र बुलाने की मांग करें। उन्होंने अपने लेख में बहसतलब मुद्दों को भी गिनवाया था। महज पांच महीने में साइनाथ का यह आह्वान साकार होता दिखा जब देश भर के किसान संगठनों की संघर्ष समन्वय समिति ने दिल्ली तक किसानों के लॉग मार्च को 29-30 नवंबर को कामयाब और तारीखी बना डाला। यह तारीख तय होने के बाद से ही साइनाथ दिल्ली के कॉलेजों और संस्थानों में जा जाकर छात्रों, युवाओं, शहरी मध्यवर्ग और नागरिक समाज को उद्वेलित करने में जुटे हुए थे। किसान मुक्ति यात्रा से ठीक पहले उन्होंने मनदीप पुनिया से कृषि संकट के विभिन्न आयामों पर बात की। प्रस्तुत है इस बातचीत के प्रमुख अंश।

किसान लगातार संगठित हो रहे हैं, आंदोलित भी हो रहे हैं, लेकिन उनका आंदोलन वैसा राजनीतिक रूप क्यों नहीं ले पाता जैसे दलितों या महिलाओं का आंदोलन? क्या एक पॉलिटिकल क्लास यानी वर्ग के बतौर किसान का दलितों या महिलाओं से कोई फर्क है? या कोई दूसरा कारण है?

सबसे पहले मैं आपके पाठकों को यह कहना चाहता हूँ कि 29 और 30 तारीख को एक किसान मुक्ति मोर्चा का आयोजन होगा। 29 तारीख को दिल्ली के चारों तरफ से किसान रामलीला मैदान आएंगे। 29 तारीख शाम को 'एक शाम किसान के नाम' से कल्चरल प्रोग्राम भी होगा। 30 तारीख सुबह दिल्ली पहुंचे किसानों के साथ मध्यम वर्ग के लोग पार्लियामेंट की तरफ मार्च करेंगे। इस मार्च के लिए निमंत्रण दिया है ऑल इंडिया किसान संघर्ष कोऑर्डिनेशन कमिटी ने, जो एक बड़ी ऑर्गेनाइजेशन है दो सौ किसान संगठनों की। मार्च में मध्यम वर्ग के लोग किसानों के साथ सॉलिडेरिटी के लिए जा रहे हैं। हम सभी का किसानों के साथ एक कनेक्शन है। हम सब एक या दो जनरेशन पहले गांव वाले हैं कुछ लोग अभी भी गांव के हैं। एग्रेरियन क्राइसिस बढ़ने के बाद इसी साल मार्च में हुए मुम्बई किसान मार्च में सॉलिडेरिटी में 10000 तक मध्यमवर्ग के लोग आ गए थे। 29 और 30 नवंबर को होने वाले मार्च में मुख्य दो डिमांड हैं। ऑल इंडिया किसान संघर्ष कोऑर्डिनेशन कमिटी ने दो बिल बनाए हैं, एक एमएसपी के बारे में है तो दूसरा कर्ज के बारे में जिन्हें पास करने के लिए मांग है कि संसद का तीन हफ्ते का एक स्पेशल सेशन बुलाया जाए। इसमें कृषि संकट के साथ दलित, किसान, आदिवासी और महिला किसानों के बारे में भी चर्चा हो। पानी के संकट और पानी के निजीकरण के खिलाफ बातचीत हो। जब जीएसटी की बात आई तो सरकार ने मिडनाइट को एक स्पेशल सेशन बुलाया और राष्ट्रपति जी को लाकर एक हफ्ते-एक रात में जीएसटी बिल पास कर दिया। स्वामीनाथन रिपोर्ट जिसे राष्ट्रीय किसान आयोग रिपोर्ट भी कहते हैं, 14 साल हो गए हैं लेकिन उस पर आज तक एक घण्टे का भी डिस्कशन नहीं हुआ है। मैं मध्यम वर्ग के लोगों को यह भी कहना चाहता हूँ कि किसान आपको साल में 365 दिन देते हैं क्या हम लोग उनको दो दिन भी नहीं दे सकते हैं? 29 और 30 नवंबर वे दो दिन हैं जिनमें आपको आना चाहिए और किसानों के साथ खड़ा होना चाहिए।

**आप स्पेशल सेशन की डिमांड कर रहे हैं जिसके बैठने की उम्मीद कम है। अगर सेशन बैठ भी जाता है तो क्या समाधान हो जाएंगे। उसके बाद किसान क्या करेगा?**

देखिए, जीएसटी के स्पेशल सेशन को आपने क्वेश्चन नहीं किया, इसके लिए सवाल आते हैं, मेरे हिसाब से यह हिपोक्रिसी है। अगर पार्लियामेंट का स्पेशल सेशन होता है तो वही किसानों के लिए बड़ी जीत होगी। कभी भी इतिहास में कृषि के ऊपर स्पेशल पार्लियामेंट सेशन नहीं हुआ है। इसके लिए बहुत सारे सांसद भी पिटिशन साइन कर रहे हैं और 21 राजनीतिक पार्टियों ने भी उन दो बिलों के सपोर्ट का एलान किया है। लोकतंत्र और आंदोलन में ऐसा होता है कि आपको अपनी मांगों के लिए हमेशा लड़ना पड़ता है। बीस साल से हम किसी संकट पर बकबक कर रहे हैं लेकिन आज तक इस पर संसद में चर्चा नहीं हुई। किसानों की यह बहुत डेमोक्रेटिक मांग है। किसानों कह रहे हैं कि यह संसद हमारे लिए भी चलनी चाहिए। यह सिर्फ कॉर्पोरेट जगत के लोगों के लिए नहीं चलनी चाहिए। इस डिमांड में गलत क्या है?

**हम डिमांड को गलत नहीं कह रहे हैं? स्पेशल सेशन हो जाने के बाद क्या रास्ता है?**

डिमांड पूरी होने के बाद उनको लड़ाई जारी रखनी होगी। ऐसा नहीं है कि एक ऐक्शन में दुनिया की सभी समस्याएं दूर हो जाएंगी। मैंने कभी नहीं सुना ऐसा। यह एक लंबी प्रक्रिया है। नवंबर की 29 और 30 तारीख कोई अंत नहीं है बल्कि एक शुरुआत है।

अस्सी के दशक से पहले किसान अपनी फसल बेचता था और उसके पास इतना पैसा आता था कि वह अपनी जरूरत की चीज भी ले लेता था और कुछ पैसे बचा भी लेता था। आखिर बाद में ऐसा क्या हुआ कि किसान भूखे मरने पर मजबूर हो गया।

यह सब कृषि संकट की वजह से हुआ है, जो 1991 में लागू हुई नवउदारवादी आर्थिक नीतियों की वजह से आया है। इन नीतियों ने खेती से किसान का नियंत्रण छीन कर कॉर्पोरेट के हाथ में दे दिया है। आज खाद, बीज और कीटनाशक, सभी कॉर्पोरेट जगत के हाथ में हैं। अभी पानी पर भी उन्हीं का कब्जा हो रहा है। महाराष्ट्र में कई जगह निजी वितरक पानी बेच रहे हैं। अभी किसानों के पास सिर्फ थोड़ी जमीन बची हुई है और उनकी मेहनत। यह सब अचानक से नहीं हुआ बल्कि हमारी आर्थिक नीतियों की वजह से हुआ है।

देखिए 1990 से पहले किसानों की कर्जा माफी जैसी कोई डिमांड नहीं होती थी। हमारी क्रेडिट पॉलिसी ऐसी है कि जो कर्ज बैंक किसान को दे रहा था अब वह कर्ज कॉर्पोरेट्स को दे रहा है। हमारी नई आर्थिक नीतियों की वजह से किसानों की उपज लागत चार से पांच गुना बढ़ गई है और उनकी आय में दोगुनी बढ़ोतरी भी नहीं हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कॉर्पोरेट जगत खेती-किसानी को अगवा कर रहा है।

**आप मान रहे हैं कि नव उदारवादी नीतियों ने ही किसानों का नुकसान किया है, तो क्या इस मौजूदा अर्थव्यवस्था में रहते हुए किसानों की समस्याओं का समाधान हो सकता है। अगर नहीं हो सकता तो क्या रास्ता है?**

2004 में राष्ट्रीय किसान आयोग जिसे हम स्वामीनाथन कमीशन भी कहते हैं, उसने एक ब्लूप्रिंट दिया। सिर्फ जमीन और कर्ज के बारे में ही नहीं बल्कि उसमें खेती से जुड़ी हर छोटी से छोटी चीज का समाधान बताया गया। मिट्टी के उपजाऊपन को ही ले लीजिए। हमने लगातार पिछले 40-50 साल से खूब रसायन का इस्तेमाल किया, जिसकी वजह से मिट्टी की उर्वरता जाती रही। इसके अलावा पानी की समस्या, महिला किसान की समस्याओं और कर्ज की समस्याओं का हल कैसे हो सकता है, स्वामीनाथन कमीशन में इस तरह की हर छोटी-बड़ी समस्याओं का भी जिक्र है और साथ ही साथ इनके समाधानों का भी। 2004 से लेकर 2018 तक, 14 वर्षों में वह रिपोर्ट पार्लियामेंट में ऐसे ही पड़ी है। उस पर एक बार भी डिस्कशन नहीं बुलाया गया है। कॉर्पोरेट जगत से जुड़े हर मामले पर संसद में डिस्कशन होता है, लेकिन एक किसान और मजदूर की समस्याओं पर ही कोई डिस्कशन नहीं हो रहा है। अगर 1995 से 2015 तक इन 20 वर्षों को देखें तो 3,10,000 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। इन सब समस्याओं का अच्छे से अध्ययन करके स्वामीनाथन आयोग ने एक विचार विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार की है, जिसमें समाधान भी निहित है। इसके साथ ही हमें लंबी दूरी के समाधानों के बारे में भी बात करनी चाहिए कि 30 साल के बाद हमें किस तरह की खेती चाहिए। हमें कॉर्पोरेट नियंत्रण वाली खेतीबाड़ी चाहिए या सामुदायिक नियंत्रण वाली। कंट्रोल एग्रीकल्चर। जो कॉर्पोरेट के लिए लैंड एक्विजिशन हो रहा है वह नहीं होना चाहिए और एक लैंड रिफॉर्म भी होना चाहिए।

**कुछ साल पहले तक एक नारा चलता था जो जुताई करेगा जमीन उसी की। लेकिन अब यह कर्ज मुक्ति जैसे नारों के बीच गायब हो चुका है। क्या कारण है इसका?**

पहले जो नारा था, लैंड टू द टिलर। मैं 15- 20 साल से अब दूसरा नारा लगा रहा हूँ “लैंड टू दोज़ हू वर्क ऑन इट” यानी जमीन उसकी जो उस पर काम करता हो। इसलिए क्योंकि उस पुराने नारे में महिला किसान छूट जाएंगे। इसलिए हमें नारा लगाना चाहिए “लैंड टू दोज़ हू वर्क ऑन इट।” इसमें खेत मजदूर भी आएगा, महिला भी आएगी और आदिवासी भी आएगा।

**कॉर्पोरेट जगत सरकार की मदद से लगातार किसानों की जमीनों का अधिग्रहण कर रहा है। ऐसे में डिस्ट्रेस माइग्रेशन (पलायन) बढ़ रहा है और किसान शहरों में आकर सस्ता मजदूर बन रहा है। इसको आप कैसे देखते हैं?**

सरकारें कॉर्पोरेट जगत की रियल इस्टेट दलाल हैं और नवउदारवाद के विकास का यही मॉडल है। 1991 से 2011 तक की जनगणना पर अगर आप नजर डालेंगे तो पता लगेगा कि 15 करोड़ किसानों ने खेती छोड़ दी है और मजदूरों की टोली में शामिल हो गए हैं। कर्ज या जमीन अधिग्रहण की वजह से उनकी जमीनें चली गई हैं या नई आर्थिक नीति की वजह से उनकी जमीन घाटे का सौदा बन गई है। अगर खेती को खत्म करेंगे तो यह ट्रेड और ज्यादा बढ़ जाएगा। खेती खत्म करके उन्हें गांव से भगाया जा रहा है और शहर आने पर मजबूर किया जा रहा है। सरकारों ने शहर में उनके लिए एक भी नौकरी नहीं बनाई है। मैं जहां रहता हूँ वहां सफाई का काम करने वाली तालेगांव की एक महिला स्किल्ड फार्मर है। वह हर दिवाली सीजन में हमारे लिए अच्छी गुणवत्ता के ब्राउन राइस लेकर आती है। अब देखिए एक स्किल्ड फार्मर को नौकर का काम करना पड़ रहा है। गांव के किसानों को शहरों में नौकर का काम

इसलिए करना पड़ता है क्योंकि हमने उनके लिए एक भी नौकरी नहीं बनाई है। उनके लिए नौकरी तो नहीं है फिर भी उन्हें खेती से भगाया जा रहा है। अब जब किसान शहरों में आ गए हैं तो सरकार उन्हें दोबारा हाशिए पर धकेल रही है स्मार्ट सिटी बनाकर। आप इंदौर को देखिए जिसे स्मार्ट सिटी बनाया जाना है। उसकी सिर्फ 2.8 फीसद आबादी ही इसके दायरे में आएगी, बाकी 97.8 फीसद को आपने फिर से सुविधाओं से वंचित कर दिया।

**अगर किसान मजदूर बन रहा है तो आप किसान मजदूर एकता को कैसे देखते हैं?**

ऐसा हो रहा है और यह बहुत अच्छी बात है। 5 सितंबर को दिल्ली हुई रैली में किसान, खेत मजदूर, औद्योगिक मजदूर और आंगनवाड़ी वर्कर्स और तमाम तरह के दूसरे वर्कर्स एक साथ मौजूद थे। अब किसानों के साथ मध्यमवर्ग को भी आना चाहिए।

सतर साल के हमारे संसदीय अनुभव हमें हमारी समस्याओं से निजात नहीं दिला सके हैं। फिर संसद से किसान और मजदूरों की समस्याओं के हल की आस लगाना क्या उचित है?

देखिए, यह बहुत पराजित सोच है। इस सोच के पीछे यह फिलॉसफी है कि आदमी बीमार है तो उसे मार दो। मैं यह कह रहा हूँ कि यह संसद मेरी संसद है, आम लोगों की संसद है। इसे कॉर्पोरेट जगत और अमीर लोगों ने हाइजैक कर लिया है, तो क्या हम बैठ जाएं और इसे उनके हाथ का खिलौना बन जाने दें। नहीं, यह डेमोक्रेसी है और हम आंदोलन करके बताएंगे कि संसद की आम जनता के प्रति जवाबदेही होनी चाहिए। पराजित सोच यह कहती है कि संसद उनके हाथ का खिलौना है, मैं कहता हूँ कि हम हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठे रहेंगे बल्कि अपने अधिकार उनसे लड़कर लेंगे। संसद को आम लोगों के प्रति जवाबदेह बनाएंगे। यह डिमांड है हमारी।

**जब संसद करोड़पतियों का क्लब बन चुकी है जहां आम किसान नहीं बैठ सकता, तो आप संसद को किसानों के प्रति जवाबदेह कैसे बनाएंगे। किसान और मजदूरों को संसद में भेजने का रास्ता क्या है?**

आप लोकतंत्र और आंदोलनों का इतिहास उठाकर देखिए। एक जमाने में ऐसा हुआ है कि आम किसान और आम मजदूर भी संसद में पहुंचे हैं। मुंबई के जिस एरिया में मैं रहा वहां 1971-72 के इलेक्शन में नवल टाटा ने चुनाव लड़ा। उनके सामने एक आम मजदूर नेता ने चुनाव लड़ा। उस मजदूर नेता का नाम मीडिया छाप भी नहीं रही थी, बल्कि यह लिख रही थी कि विपक्ष की हार दो लाख से या तीन लाख से निश्चित है। हुआ इसके उलट और वह मजदूर नेता दो लाख के बड़े अंतर से जीत गया। मैं यह नहीं मानता कि इंडियन स्टेट और डेमोक्रेसी बुर्जुआ के हाथ में चला गया है। भारत की आजादी की लड़ाई आम जनता ने लड़ी थी इसलिए यह राज्य और लोकतंत्र आम लोगों के लिए है।

## हाशिये की बात

### प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र में महिलाएं नहीं दे सकती अपना मांग-पत्र

**वाराणसी:** नफरत और हिंसा की राजधानी के खिलाफ रोजी-रोटी-रोजगार के लिए ऐपवा ने संविधान दिवस पर महिला अधिकार मार्च निकाला. लम्बे समय से सरकार की गरीब विरोधी नीतियों के चलते दमन और उत्पीड़न झेल रही है पूर्वी उत्तर प्रदेश की मेहनतकश महिलाओं ने अपनी एक दिन की मजदूरी छोड़ मार्च में शामिल रहीं.

बनारस शहर के तमाम सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों ने भी अधिकार मार्च में हिस्सा लिया. सात किमी की लंबी दूरी तय करके अपनी मांगों के साथ पीएमओ पहुंची महिलाओं का मांग पत्र वहां लेने से मना कर दिया. लेकिन महिलाओं के पुलिस प्रशासन के सामने डटी रहीं और सभा के मध्यम से अपनी बात रखी गई तब कही जा कर सभा का आवाहन किया.

सभा को सम्बोधित करते हुए ऐपवा की राष्ट्रीय महासचिव मीना तिवारी ने कहा कि केन्द्र और उत्तर प्रदेश में बैठी मोदी सरकार महिला सशक्तिकरण के नाम पर सिर्फ खोखले वादे और नारे देने का काम कर रही है, तमाम योजनायें बनाकर महिलाओं को ठग रही है.

मीना तिवारी ने कहा कि देश में नफरत और हिंसा फैलाने का इतिहास रखने वाली भाजपा सरकार ने महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार जैसे बुनियादी सवालों पर चप्पी साध रखी हैं. उन्होंने कहा कि मेहनतकश महिलाएं अपने हक, अधिकार के लिए सड़क पर उतरकर इस संविधान विरोधी, महिला विरोधी सरकार को चुनौती देने उतरी है। ताकि सरकार तक इसकी आवाज़ जा सके.

उन्होंने कहा कि स्वच्छता अभियान पर करोड़ों खर्च करने वाली यह सरकार गांवों में शौचालय के लिए जमीन तक मुहैया नहीं करा पा रही है बल्कि उल्टे फोटोग्राफी करके और सीटी बजाकर उनका यौन उत्पीड़न कर रही है.

ऐपवा संयोजिका स्मिता बागडे ने कहा कि मोदी-योगी सरकार में दलित-आदिवासी महिलाओं को बड़े पैमाने पर जमीन से बेदखल कर बर्बर दंग से दमन किया जा रहा है.

अल्पसंख्यकों के हक में लगातार आवाज उठाने वाले रिहाई मंच के महासचिव राजीव यादव ने कहा कि मन्दिर का राग अलापने वाली सबरीमाला में महिलाओं का प्रवेश कराकर दिखाएँ? हकीकत तो यह है कि मन्दिर में प्रवेश के नाम पर आज भी दलितों की हत्या कर दी जाती है. प्रधानमन्त्री के निर्वाचन क्षेत्र में बीएचयू की लड़कियाँ जब आधी रात में अपनी आज़ादी के लिए लड़ाई लड़ रहीं थी तब उन पर लाठियां भांजी.



राजीव यादव ने कहा कि मोदी राज में जब भी बेगुनाहों का कत्ल किया गया चाहे वो इशरत जहाँ का मामला हों या फिर रोहित वेमुला और नजीब प्रकरण का, हमेशा इन्साफ के लिए माओं को आगे आना पड़ा. आज साम्प्रदायिक तत्व सम्बिधान दिवस से ठीक एक दिन पहले सम्बिधान कमजोर करने के उद्देश्य से अयोध्या में मन्दिर निर्माण की बात कर रहे हैं.

प्रोफेसर चौथीराम यादव ने कहा कि संघ भाजपा के फासीवादी विचार की सबसे पहली मार आधी आबादी पर पड़ रही है.

डॉ नूर फातिमा ने कहा कि देश की मेहनतकश बेटियां सुदूर जिलों से अपनी शिकायत पत्र लेकर आती हैं तो प्रधानमन्त्री कार्यालय पर ही कोई बात नहीं सुनी जाती इससे ये साबित है कि मोदी सरकार की स्त्रियों तक पहुंच क्या है?

**(ट्रसर्किल से साभार)**

## ‘दलित मुसलमान का मेला’ एक नई कोशिश नई पहल

भारत में मुस्लिम समुदाय को दलित कि सूची में नहीं माना जाता हैं लेकिन उनकी स्थिति दलितों से भी बदतर हैं. आज भी मुस्लिम अल्पसंख्यकों की कई जातियां हैं जिन्हें पसमांदा मुस्लिम कहते हैं वे आज भी तमामतर सरकारी योजना और मुख्यधारा से जुड़ने के बाद भी पिछड़ेपन की ज़िन्दगी जीने को मज़बूर हैं.

बीते दिनों इस मुद्दे पर बिहार में ‘दलित मुसलमान मेला’ का आयोजन किया गया जहाँ मुसलमानों कि इसी तरह कि जातियों को प्रमुखता से समाज के सामने लाया गया.

इसके आयोजक दलित मुस्लिमों पर शोध कर रहे डॉ. अयूब राईन थे.

डॉ अयूब रायन के अनुसार दलित मुस्लिम समाज के लोगों को आज भी सामाजिक भेदभाव को सहन करना पड़ता है. उन्होंने बताया कि मुस्लिम समाज में फॉर्वर्ड जातियों और मुस्लिम-दलित जातियों के कब्रिस्तान अलग-अलग होते है. जिन्हे दलित मुस्लिम समाज के मैयत को किसी भी स्तिथि में दफनाने की इजाजत नहीं होती है. डॉ अयूब का मानना है कि जिन जातिगत भेदभाव का वो सामना करते हैं उससे वो एहसासे कमतरी के शिकार हैं, इसलिए उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान होने की बहुत ज़रूरत हैं.

बिहार में नीतीश सरकार द्वारा दलित-मुस्लिमों के लिए ‘तालीमी-मरकज़’ की शुरुआत की। जिसमे उसी जाति के मिनिमम मैट्रिक पास मर्द या औरत को उन्ही के पॉकेट एरिया के बच्चों को बुनियादी शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया। साथ की ये भी सरकार द्वारा विलाप दिया कि अगर उनकी जाति में मौजूद नहीं हैं जो मुसलमानों के दूसरी जातियों से भी नियुक्ति की जा सकती हैं।

उन्होंने बताया कि जिस योजना को सरकार समाज में बदलाव के लिए शुरू किया लेकिन लोगों ने अपने फायदे के लिए इस्तमाल करना शुरू कर दिया। दरअसल इस योजना के तहत जितने भी बहालियां हुई उनकी मॉनिटरिंग सरकार द्वारा या मुस्लिम सामाजिक संस्था द्वारा कभी नहीं की गई। बहाल हुए ज्यादातर लोग या तो माइग्रेट होकर रिमोर्ट इलाकों से बस्तियों में जा चुके हैं या जो आते हैं वो सप्ताह या 15 दिनों में एक बार पढ़ा जाते हैं। ऐसे में इस योजना को सामाजिक-शैक्षणिक लाभ मिलें ये कैसे मुमकिन होगा।

डॉ अयूब ने बताया कि पुरे बिहार में बखो मुस्लिमों की जाति हैं उनमे अब तक केवल 12 लोग ही ग्रेजुएट हुए हैं और बरसों से लेकर अब तक इस जाति का एक सदरस्य ही पिछले साल सरकारी चपरासी की नौकरी में आया है।

इस अवसर पर डॉ. अयूब राइन की तीसरी शोध पुस्तक भारत के दलित मुसलमान खंड 2 का भी लोकार्पण हुआ। इससे पहले वे दलित मुसलमानों पर दो किताब लिख चुके हैं। उनकी पहली किताब 'भारत के दलित मुसलमान, खंड 1' और दूसरी 'पमारिया' रही है। इन पुस्तक में भारत के राइन, मीरशिकार, शिकालगर, पमारिया, फ़कीर, मीरासी, चुड़िहारा, डफाली और धोबी पर शोध लेख है।

इस पुस्तक का विमोचन विख्यात पत्रकार अनिल चमड़िया के हाथों किया गया। इस पुस्तक में मुस्लिम समाज की 10 पिछड़ी एवं 10 जातियों पर शोध आलेख को स्थान दिया गया है। इस पुस्तक में दर्जी, इराक़ी, नालबंद, मुकेरी, भटियारा, गदहेड़ी, हलालखोर, ग्वाला (गद्दी), बक्खो और जट दलित मुस्लिम जातियों पर शोध लेख है।

साथ ही उन्होंने बताया कि वे अब तक कुल 22 दलित मुस्लिम जातियों पर काम कर चुके हैं। इसके अलावा 2009 से जर्नल ऑफ़ सोशल रियलिटी जर्नल भी निकालते रहे हैं। जिनमें दलित मुस्लिम जातियों पर शोध लेख को प्रकाशित किया जाता है।

डॉ. अयूब ने कहा कि हिन्दू दलितों को तो आरक्षण देकर सामाजिक और आर्थिक रूप से सबल बनाया जा रहा है। लेकिन, भारतीय संविधान की धारा 341 के तहत मुस्लिम दलित जातियों के लिए आरक्षण पर रोक है। उन्होंने कहा कि इस मेले का उद्देश्य मुस्लिम दलित जातियों को शिक्षा के प्रति जागृत करना है। जिससे वे अपने अधिकार की लड़ाई लड़ सकें।

इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के तौर पर शामिल दरभंगा एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष डॉ. अम्बर इमाम हाशमी ने कहा कि जरूरत इस बात की है कि समाज के इस वर्ग की बदहाली दूर की जाए। इसके लिए सामाजिक तौर पर चेतना जगाने की जरूरत है।

वहीं इस प्रोग्राम के शामिल एडीएम नेयाज अहमद ने कहा कि मुस्लिम समाज के दलित संवर्ग के लोगों के अंदर शिक्षा के बगैर उन लोगों की उन्नति संभव नहीं है। उन्होंने कहा कि इस तरह का आयोजन हर वर्ष होना चाहिए।

इसके अलावा प्रोग्राम में शामिल विशिष्ट अतिथि प्रो. प्रोफेसर टुनटुन झा अचल ने कहा कि दलित मुसलमानों का मेला' के नाम पर मुस्लिम समाज के दलित मुसलमानों को एक कड़ी में जोड़ने का काम किया है। समाज के दलितों की तरह मुस्लिम समाज के दलितों को भी आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए।

इस कार्यक्रम में शामिल ज्यादातर पसमांदा समाज से आये लोग रहें। दरभंगा की रहने वाली डफाली समाज की नूरैसा खातून ने बताया कि इस तरह का सामाजिक पहल पहली बार हुआ है। जहाँ हम मुस्लिम दलित लोगों के समस्याओं और निदानों पर चर्चा की जा रही है।

इसी तरह प्रोग्राम में आई रजिया ने बताया कि आज भी कर रहे हैं हम सालों से करते आये हैं। सरकार की तरफ से कहीं न कहीं हमे अनदेखा किया गया है।

मेले में लगे विभिन्न मुस्लिम जातियों के स्टॉल पर झांकियां दर्शाई गईं। साथ ही इस मेले के माध्यम से मुसलमानों की 30 से अधिक दलित जातियों के कामकाज, रहन-सहन, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति के बारे में समाज के समक्ष रखना भी रहा।

**(टूसर्किल से साभार)**

## पत्रकारों पर हमले के खिलाफ पहला राष्ट्रीय सम्मेलन

देश में पत्रकारों पर हो रहे हमलों के विषय पर पहली बार दो दिन का एक राष्ट्रीय सम्मेलन दिल्ली के कांस्टिट्यूशन क्लब में 22 और 23 सितंबर, 2018 को आयोजित किया गया जिसमें करीब दस राज्यों के पत्रकारों ने शिरकत की और अपनी आपबीती रखी। इस कार्यक्रम का स्वरूप एक सुनवाई (ट्रिब्यूनल) की तरह था जहां विभिन्न किस्म के हमलों के शिकार पत्रकार और मारे गए पत्रकारों के परिजनों की गवाहियां रखी गई थीं।

पत्रकारों पर हमले के खिलाफ दो दिन के इस राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था पत्रकारों पर हमले के खिलाफ समिति (सीएएजे) ने, जिसे प्रेस क्लब ऑफ इंडिया से सक्रिय सहयोग मिला था और सम्मेलन पत्रकार सुरक्षा से जुड़ी अंतरराष्ट्रीय संस्था कमिटी टु प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट्स (सीपीजे) द्वारा समर्थित था। सीएएजे कुल 34 घटकों का एक समूह है जिसमें स्वतंत्र मीडिया और नागरिक समाज के संगठनों की भागीदारी है। सम्मेलन की मूल अवधारणा ही यह थी कि लोकतंत्र में सिकुड़ती हुई असहमति और अभिव्यक्ति की स्पेस को संबोधित करने के लिए पत्रकारों और नागरिक समाज के पैरोकारों को साथ आना होगा। चूंकि अभिव्यक्ति और असहमति पर बंदिशों का सीधा प्रभाव पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर समान रूप से पड़ रहा है, लिहाजा यह वक्त की मांग है कि समाज के सभी प्रभावित तबके एक साथ आकर एक मंच पर एक-दूसरे के हितों की पैरवी करें।

कश्मीर में पत्रकार शुजात बुखारी की हत्या के वक्त इस राष्ट्रीय सम्मेलन की अवधारणा तैयार हुई थी जब पत्रकारों पर हमले के खिलाफ एक समिति के गठन के लिए कई सामाजिक संगठनों और स्वतंत्र मीडिया संस्थानों को वेबसाइट मीडियाविजिल डॉट कॉम की ओर से आमंत्रण भेजा गया था। सम्मेलन की तैयारी के लिए दो महीने तक चली प्रक्रिया में दोतरफा काम हुआ- पहला, समिति का औपचारिक गठन और दूसरा, पिछले आठ वर्ष के दौरान भारत में पत्रकारों पर हमले के मामलों का संकलन। संकलन तैयार होने पर पीडित पत्रकारों और मारे गए पत्रकारों के परिजनों से संपर्क साधने की कोशिश की गई, जिसके बाद धीरे-धीरे एक खाका तैयार हुआ।

चूंकि आयोजन पत्रकारों के ऊपर हमले पर ही केंद्रित था और पत्रकारों से संपर्क की प्रक्रिया में हमलों की विविधता का भी अहसास हुआ, लिहाजा सम्मेलन का खाका तैयार करते वक्त इस बात का विशेष खयाल रखा गया कि किसी किस्म का हमला नज़र से छूटने न पाए। इसके लिए कमेटी ने सलाह मशविरे के बाद हमलों की चार श्रेणियों को अंतिम रूप दिया: 1) हत्या और शारीरिक हमला, 2) ट्रोल और धमकियां, 3) सरकारी कानूनों का दुरुपयोग, फर्जी मुकदमे और मानहानि, 4) सर्वेलांस (निगरानी) और सेंसरशिप (बंदिशें)। इन्हीं श्रेणियों के हिसाब से चार सत्र तय किए गए। दो अतिरिक्त सत्र थे उद्घाटन और समापन सत्र।

सम्मेलन का उद्घाटन 22 सितंबर को अभिनेता प्रकाश राज और वरिष्ठ संपादक ललित सुरजन के बीज वक्तव्यों से हुआ, जिसकी अध्यक्षता वरिष्ठ पत्रकार आनंद स्वरूप वर्मा ने की। अभिनेता प्रकाश राज को बुलाने की खास वजह यह रही कि पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या के बाद उन्होंने इस घटना की तमाम मंचों पर खुलकर आलोचना की थी और अभिव्यक्ति की आज़ादी के हक में अपनी आवाज उठायी थी।

लंकेश पत्रिका की संपादक गौरी लंकेश उनकी खास मित्र थीं। ललित सुरजन संपादक परंपरा में बचे हुए इक्का-दुक्का संपादकों में से एक हैं जो लगातार छत्तीसगढ़ में अभिव्यक्ति की आज़ादी पर बंदिशों के खिलाफ खुलकर लिखते रहे हैं। वे देशबंधु अखबार के स्वामी और संपादक हैं। दोनों वक्ताओं ने बहुत विस्तार से आज के हालात पर अपनी बात रखी, जिसके बाद सत्र की अध्यक्षता कर रहे आनंद स्वरूप वर्मा ने सम्मेलन को संबोधित किया।

इस उद्घाटन सत्र में ही सीपीजे के इंडिया करेस्पॉन्डेंट कुणाल मजूमदार ने सीपीजे की ओर से सम्मेलन के समर्थन में जारी एक वक्तव्य पढ़ा। उद्घाटन सत्र में सम्मेलन में चार सौ से ज्यादा पत्रकारों व गैर-पत्रकारों ने पंजीकरण करवा लिया था। सभागार पूरा भरा हुआ था और डिजिटल व सोशल मीडिया में सम्मेलन के उद्घाटन सत्र की कवरेज बहुत व्यापक व कामयाब रही।

उद्घाटन के बाद हमलों पर पहला औपचारिक सत्र भावनात्मक रहा। इसमें पत्रकारों की हत्या के कुछ मामले आए थे जिसमें मारे गए पत्रकारों के परिजनों ने मज़बूती से अपनी बात रखी। उत्तराखण्ड के पत्रकार देवेन्द्र पटवाल की मां गंगा देवी, बिहार के पत्रकार राजदेव रंजन की पत्नी आशा रंजन, उत्तर प्रदेश के पत्रकार नवीन गुप्ता के भाई नितिन गुप्ता और उनकी मां की गवाहियां हृदयविदारक थीं। इन तीनों पत्रकारों की काम के दौरान हत्या हुई थी। किसी भी मामले में पीड़ित परिवार को अब तक इंसाफ नहीं मिला है। मध्यप्रदेश के भिंड में मारे गए पत्रकार संदीप शर्मा का केस मीडियाविजिल डॉट कॉम के कार्यकारी संपादक अभिषेक श्रीवास्तव ने विस्तार से रखा, जो इंदौर में मृतक के परिवार से मिलकर लौटे थे। शर्मा का केस रखने भोपाल से उनके पत्रकार मित्र विकास पुरोहित को आना था जो आखिरी वक्त में नहीं आ सके। उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद से आए इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स के वरिष्ठ पत्रकार डॉ. संतोष गुप्ता ने उत्तर प्रदेश में हत्या के पांच मामले गिनवाए और सभी का विवरण प्रस्तुत किया। इस सत्र की अध्यक्षता सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता संजय पारिख ने की।

पहला सत्र दोपहर के भोजन के बाद जारी रहा, जिसमें कश्मीर से आए गल्फ न्यूज़ के पत्रकार जलील राठौर और मेघालय से आई शिलांग टाइम्स की संपादक पैट्रीशिया मुखिम ने अपने-अपने इलाकों में पत्रकारिता के खतरों पर बात की। पैट्रीशिया के घर पर इस साल पेट्रोल बम से हमला हुआ था। उन्होंने मेघालय में गैर-कानूनी खनन पर स्टोरी की थी जिसके चलते वे खनन माफिया के निशाने पर आ गई थीं। हाल ही में कश्मीर से लौटकर आए सीपीजे की टीम की एक रिपोर्ट इस सत्र में कुणाल मजूमदार ने प्रस्तुत की।

दूसरा सत्र ट्रोल और धमकियों पर था, जिसे रवीश कुमार, नेहा दीक्षित और निखिल वागले ने संबोधित किया और अपने-अपने मामले विस्तार से बताए। सत्र की अध्यक्षता निखिल वागले ने की।

दूसरे दिन की कार्रवाई बारिश के चलते नियत समय से आधा घंटा देरी से शुरू हुई। पहला सत्र जो फर्जी मुकदमों और मानहानि पर केंद्रित था, उसमें दर्जन भर से ज्यादा पत्रकारों ने अपने केस रखे। सबसे बड़ी भागीदारी छत्तीसगढ़ से थी जहां से पत्रकार कमल शुक्ला, आवेश तिवारी, प्रभात सिंह और संतोष यादव आए थे। पंजाब से रचना खैरा, यूपी से सलीम बेग और शिव दास, बिहार से पुष्यमित्र, झारखण्ड से विनोद कुमार, केरल से शाहीना के ने अपने-अपने केस विस्तार से बताए। दिलचस्प बात रही कि इस सत्र में

भागीदारी कर रहे तकरीबन सभी पत्रकारों पर एक न एक मुकदम कायम था और अधिकतर जमानत पर थे। विनोद कुमार के ऊपर तो फेसबुक पोस्ट लिखने के चलते राजद्रोह का मुकदमा लगा हुआ है। इन सभी पत्रकारों ने छोटे शहरों कस्बों में पत्रकारिता करने के खतरे गिनाए और दिल्ली की पत्रकारिता के साथ कस्बाई पत्रकारिता के फ़र्क को बखूबी रेखांकित किया। इसी सत्र में इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स के राष्ट्रीय सचिव सिद्धार्थ कलहंस ने पत्रकारों की सुरक्षा को लेकर अपनी यूनियन की ओर से किए जाने वाले प्रयासों की जानकारी दी। इस सत्र में वेबसाइट दि वायर के संपादक सिद्धार्थ वरदराजन को भी बतौर वक्ता मौजूद होना था लेकिन किसी कारणवश वे नहीं आ सके। उनका शुभकामना संदेश मंच से पढ़ा गया। सत्र की अध्यक्षता मेनस्ट्रीम के संपादक सुमित चक्रवर्ती ने की।

दूसरे दिन के दूसरे सत्र का विषय सर्वेलांस और सेंसरशिप था। इसमें भागीदारी करने वाले वक्ता थे पत्रकार पुण्य प्रसून वाजपेयी, जिन्हें कुछ ही दिन पहले एबीपी न्यूज़ से इस्तीफा देना पड़ा है। उनके अलावा राजस्थान पत्रिका के सलाहकार संपादक ओम थानवी, नेशनल हेरल्ड के विश्वदीपक, दि हिंदू में वरिष्ठ खोजी पत्रकार रहे जोसी जोसेफ, कनाडा के रेडियो के लिए पंजाब से काम करने वाले सुही सवेर के संपादक शिव इंदर सिंह, गोरखपुर न्यूज़लाइन के संपादक मनोज कुमार सिंह और इलाहाबाद से आई दस्तक पत्रिका की संपादक सीमा आज़ाद ने अपनी बात रखी, जो यूएपीए कानून के तहत जेल की सजा काट चुकी हैं। सत्र की अध्यक्षता कारवां पत्रिका के राजनीतिक संपादक हरतोश सिंह बल ने की।

सम्मेलन का समापन सत्र चार कार्यकारी सत्रों के संक्षेपण के लिए तय था। उद्घाटन सहित कुल पांच सत्रों में क्रमशः मॉडरेटर की भूमिका निभाने वाले पामेला फिलिपोस, अटल तिवारी, नित्यानंद गायन, अनुषा पॉल और ऋचा पांडे ने अपने-अपने सत्र की कार्रवाइयों का सार रखा। उसके बाद वरिष्ठ पत्रकार आनंद स्वरूप वर्मा ने सम्मेलन में लिए जाने वाले संकल्प का मजमून पढ़ा। संकल्प में कहा गया कि यह सदन सम्मेलन के आयोजकों को आयोजन समिति सीएएजे के विस्तार और भावी कार्यक्रमों की जिम्मेदारी सौंपता है। सदन ने एक स्वर में संकल्प को पारित किया। इस सत्र की अध्यक्षता अनिल चौधरी ने की।

**सम्मेलन के सारे वीडियो यहां उपलब्ध हैं:**

<https://www.youtube.com/channel/UCsJ1SnFJbPgaaEvoLxNTgrw/videos>

**सम्मेलन की आयोजन समिति की वेबसाइट:**

[www.caajindia.org](http://www.caajindia.org)

## शेड्स ऑफ ग्रे

### कोयला घोटाला: एक चिंगारी जिसने आग लगा दी

कपिल सिब्बल

इतिहास में कुछ ऐसे मौके आते हैं जब वर्तमान में हो रही घटनाओं का भविष्य पर पड़ने वाला असर तुरंत भांपना मुमकिन नहीं होता। बस एक चिंगारी ऐसी आग लगाने की कुव्वत रखती है जो जिधर फैले, उधर सब कुछ निगलती जाए। आग थमने के बाद बचा हुआ मलबा वातावरण को धीरे-धीरे नष्ट करता रहता है। नए पौधों को अंकुरित होने में फिर बरसों लग जाते हैं।

सरकार 2010 में सामने आए 2जी घोटाले के बोझ से अभी दबी ही पड़ी थी कि अगस्त 2012 में सीएजी की जारी की रिपोर्ट "परफॉर्मेंस ऑडिट ऑफ अलोकेशन ऑफ कोल ब्लॉक्स एंड ऑगमेंटेशन ऑफ कोल प्रोडक्शन, मिनिस्ट्री ऑफ कोल' ' ने आग में घी का काम किया।

इस रिपोर्ट के मुताबिक कोयला घोटाले के कारण हुआ कुल नुकसान 1.86 लाख करोड़ रुपये का आंका गया था। सीएजी की दलील इस तथ्य पर टिकी हुई थी कि सरकार ने 2004 से 2011 के बीच 194 कोल ब्लॉक की नीलामी नहीं करने का फैसला लिया जिससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि देश को बड़ी मात्रा में राजस्व की हानि हुई। रिपोर्ट के मुताबिक नीलामी न होने के चलते टाटा स्टील, टाटा पावर, एस्सार पावर, हिंडालको और जिंदल स्टील एंड पावर को नामांकन के आधार पर हुए आवंटन से काफी मौद्रिक लाभ मिला। शुरुआत में यह नुकसान 10 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा आंका गया था लेकिन सीएजी ने सरकारी उपक्रमों को अपनी अंतिम रिपोर्ट से बाहर रखते हुए इस आंकड़े को कम कर के 1.86 लाख करोड़ पर ला दिया। रिपोर्ट इस बात पर जोर देती थी कि कीमती कुदरती संसाधनों की नीलामी की जानी चाहिए और अंतरमंत्रालयी स्क्रीनिंग कमेटी की सिफारिशों के आधार पर मंजूर किया गया कैप्टिव खनन कंपनियों के प्रति दरियादिली दिखाने का एक तरीका है। सीएजी ने इस तरह एक बार फिर से सरकार को कठघरे में ला खड़ा किया था। एक लेखा परीक्षक की अपनी भूमिका का अतिक्रमण करते हुए उसने लेखा परीक्षण की प्रक्रिया में कथित तौर पर बेहतर नीतिगत प्रस्तावों के लिए पिछले फैसलों को फटकारा था।

सीएजी द्वारा गिनाए गए वास्तविक और अनुमानित घाटे के बीच का फ़र्क लोगों को समझ नहीं आया। यह बात समझ से परे थी कि सीएजी कीमती कुदरती संसाधनों के संदर्भ में एक नया



नीतिगत ढांचा प्रस्तुत कर रहा है। संसद और राजनीतिक हलकों में काफी हो-हल्ला हुआ। विपक्ष खून का प्यासा हो गया और अन्ना हजारे की टीम, आरएसएस, बीजेपी और अन्य विपक्षी दल यूपीए को उखाड़ फेंकने के लिए सामने आ गए। यहां मीडिया ने भी विपक्ष की भूमिका निभायी। सुप्रीम कोर्ट का 2014 में दिया फैसला ताबूत में आखिरी कील साबित हुआ। उसने 1993 से 2012 के बीच कोयला ब्लॉकों के समूचे आवंटन के सिलसिले को ही रद्द कर डाला। ऐसा करते वक्त अदालत को उद्योग और अर्थव्यवस्था पर इस ऐतिहासिक फैसले के पड़ने वाले प्रभावों का अहसास नहीं था। इसके बाद शुरू हुआ कुदरती संसाधनों की नीलामी का एक मेला, जिसने अर्थव्यवस्था को एक ऐसे संकट में डाल दिया जहां वह आज खुद को खड़ा पाती है। स्क्रीनिंग कमेटी वाले तरीके को असंवैधानिक पाया गया और सरकारी फैसले को अवैध ठहरा दिया गया। यहां तक कि राज्यों की सरकारी कंपनियों द्वारा किए गए संयुक्त उपक्रमों को भी अवैध माना गया। अदालत का कहना था कि ऐसे समझौते कोयला खदान राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1973 में रेखांकित विधायी नीति का उल्लंघन करते हैं चूंकि उसमें व्यावसायिक उपयोग के लिए कोयला खदानों के निजी कंपनियों द्वारा दोहन को मंजूरी मिली हुई है।<sup>14</sup> 25 सितंबर 2014 को आया यह फैसला हालांकि इस तथ्य को मानता है कि आवंटनों के अवैध होने के नतीजों से अभी निपटा जाना बाकी है।<sup>15</sup> अदालत को यह बताए जाने के बावजूद कि उसका फैसला अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर डालेगा, उसने इस पर कान नहीं दिया।<sup>16</sup>

सर्वोच्च अदालत को यह बात समझनी चाहिए थी कि कोयला खदानों का आवंटन रद्द करने का उसका फैसला कोयले की उपलब्धता पर असर डाल सकता है; कि बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा कोयला खदान आवंटित कंपनियों को दिया गया 2.5 लाख करोड़ का कर्ज एनपीए में तब्दील हो जा सकता है;<sup>17</sup> मौजूदा स्टील और ऊर्जा परियोजनाओं में किया गया निवेश बेकार हो सकता है जिसका सरकारी बैंकों और निगमों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा निवेशकों का भरोसा भी डिगने का खतरा था जिससे संबंधित उद्योगों में तीव्र संकट पैदा हो जाता, जो ईंधन के प्राथमिक स्रोत के रूप में कोयले का इस्तेमाल करती हैं। इस सब का अर्थव्यवस्था पर तबाही जैसा असर होगा, इस चिंता से अदालत गाफिल रही। अदालत इस बात को भी नहीं समझ सकी कि रॉयल्टी, उपकर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के रूप में 4.4 लाख करोड़ का नुकसान हो जाएगा।<sup>18</sup> अवंटन चूंकि निकट भविष्य में होना था लिहाजा उद्योगों को तब तक ज्यादा कीमत पर कोयले का आयात करना पड़ता जिससे उपभोक्ता के स्तर पर लागत बढ़ने का खतरा था।

अदालत के पास आवंटनों के अवैध होने के संबंध में फैसले का अधिकार बेशक है लेकिन उसे इसके प्रभावों का भी अंदाजा होना चाहिए। अदालत को इस बात से गाफिल नहीं रहना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कियया जाने वाला निवेश विद्यमान नीतियों के मददेनजर कियया जाता है। निवेशक ऐसी नीतियों के विधिक आयामों से अनभिज्ञ होते हैं। वास्तव में किसी

भी निवेशक ने यह नहीं सोचा होगा कि कोयला आवंटन की जो नीति 1993 से 2012 तक लागू रही, उसे 2014 में एक झटके में समाप्त कर दिया जाएगा। लंबे समय से चली आ रही किसी नीति को यदि राज्य खतम कर देता है तो उसमें अनभिज्ञ निवेशक का कोई दोष नहीं। यह फैसला ठोस कानूनी दलीलों पर आधारित था या नहीं, उसका विश्लेषण करने के लिए यह जगह उपयुक्त नहीं है।

स्क्रीनिंग कमेटी के माध्यम से किए गए आवंटन में निजी क्षेत्र, केंद्र सरकार और वह राज्य जहां कोयला ब्लॉक स्थित है- तीनों सक्रिय भागीदार थे। जिस सरकार ने इस रास्ते से आवंटन किया उसके बारे में बहुत कुछ अभी कहा जाना बाकी है। फिलहाल यह मान लें कि अदालत ने जो किया वह उसने पूरी तरह सही किया, तब भी एक सवाल बचा रह जाता है कि क्या कोर्ट को सारे आवंटन रद्द करने चाहिए थे, वे भी जहां कुछ गलत नहीं हुआ। क्या अदालत अपने एक फैसले से निजी निवेशकों को एक गंभीर आर्थिक परिणाम भुगतने को बाध्य कर सकती है जबकि उनके ऊपर कुछ गलत करने का आरोप तक न हो? क्या अदालत को यह नहीं समझना चाहिए था कि सरकार की नीतियों और उनके क्रियान्वयन में कथित कमियों के चलते उसे निवेशक को अनावश्यक दंडित नहीं करना चाहिए था?

कोयला ब्लॉकों का आवंटन रद्द होने के बाद सरकार ने कोयला ब्लॉकों को नीलामी के लिए खोल दिया जिस पर मुकदमा हो गया। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लें कि किसी कंपनी ने खुद को आवंटित एक कोयला ब्लॉक के करीब पावर प्लांट लगाया। उसकी लागत उसे 5000 से 20,000 करोड़ के बीच आई। उस कोयला ब्लॉक का आवंटन रद्द होने पर कंपनी को दो नुकसान होंगे। पहला, उसके पावर प्लांट के लिए काम आने वाले कोयला ब्लॉक का नुकसान। दूसरा, प्लांट यदि किसी भीतर के इलाके में है तो उसे किसी दूसरे ब्लॉक का आवंटन लेना होगा, जो कुछ दूरी पर हो सकता है। इससे उसकी परिवहन लागत बढ़ेगी। यह भी इस पर निर्भर करता है कि नीलामी में उसे कोयला ब्लॉक प्राप्त होता है या नहीं। कोयले के परिवहन का प्रकूल असर पर्यावरण पर पड़ेगा। यदि उक्त कंपनी नीलामी में कामयाब नहीं हुई तब उसे कहीं जदा कीमत पर कोयला आयातित करना पड़ेगा। इन सभी कारकों का अंततः उसके उद्यम पर गंभीर आर्थिक प्रभाव होगा।

हकीकत यह है कि कोयला ब्लॉकों का आवंटन रद्द होने से कोयले का दोहन और प्रभावी उपयोग सात से आठ साल पीछे चला गया है। इसकी प्रतिक्रिया में अदालत की टिप्पणी यह थी: "वे उत्पादन के लिए 95 फीसद तैयार हों या 92 फीसद या 90 फीसद, यह बात पूरी तरह अप्रासंगिक है, जैसा कि पहले कहा गया यह आवंटन गैरकानूनी और यादृच्छिक था और इसीलिए हम सभी आवंटनों को रद्द करते हैं। विद्वान अटॉर्नी जनरल ने ऐसे 46 कोल ब्लॉकों की पहचान की है जिन्हें इस फैसले से 'बचाया' जा सकता है, चूंकि इन सभी ने या तो

उत्पादन शुरू कर दिया है अथवा उत्पादन शुरू करने के कगार पर हैं। चूंकि ये आवंटन भी गैरकानूनी और यादृच्छिक हैं, तो वे भी रद्द किए जाने योग्य हैं...। ” 9

फैसले से उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि अदालत को इस बात का भान था कि उसका फैसला बड़े पैमाने पर आर्थिक उलटफेर कर सकता है जो समूचे कोयला क्षेत्र को ही अस्थिर बना देगा, जिसकी जद में आगे ऊर्जा, स्टील और सीमेंट के क्षेत्र भी आएंगे। निवेशों को जो नुकसान हुआ उससे इतर इस फैसले का नतीजा यह हुआ कि 2011 से 2015 के बीच उद्योगों की जरूरत को पूरा करने के लिए आयातित कोयले की दर में पर्याप्त वृद्धि हुई है। आयात सालाना 25 फीसद की दर से बढ़ा है। 2015 में आयातित कोयले का कुल मूल्य 955 अरब रहा।<sup>10</sup> इस अवधि में कुकिंग कोल के आयात में करीब 75 फीसद की वृद्धि हुई है जबकि नॉन-कुकिंग कोल के आयात में इसी अवधि में 250 फीसद का इजाफा हुआ है। हमारे देश में भले ही कोयला प्रचुर मात्रा में है (315 अरब टन<sup>11</sup>) जिसका नब्बे फीसद नॉन-कुकिंग कोयला है, वह दोहन के लिए उपलब्ध नहीं है। जो उद्योग यहां के नॉन-कुकिंग कोयले का उपयोग कर सकते थे उन्हें उससे वंचित रखा गया है। इसके आयात के लिए उन्हें ज्यादा कीमत चुकानी पड़ रही है जिससे कीमतों पर प्रभाव पड़ रहा है। इसके चलते इनफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं की लागत काफी बढ़ गई है, साथ ही घरेलू कोयले पर निर्भर परियोजनाएं विलंबित हो गई हैं क्योंकि नॉन-कुकिंग कोयले की अचानक आवश्यकता बढ़ गई है।

यह विनाशक प्रभाव सबसे ज्यादा बिजली के क्षेत्र में देखा जा रहा है जहां मौजूदा इंस्टॉल क्षमता का 57.3 फीसद कोयला आधारित है।<sup>12</sup> 2009 से 2015 के बीच जहां बिजली कंपनियों की इंस्टॉल क्षमता 13 फीसदी की सीएजीआर वृद्धि दर से बढ़ी है, वहीं कोयला आधारित बिजली की क्षमता में सीएजीआर पर केवल 8.5 फीसद की वृद्धि दर्ज की गई। कच्चे माल की आपूर्ति नहीं होने से कई परियोजनाएं तो ठस पड़ी रही हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि कोयला आधारित संयंत्रों के लिए औसत प्लांट लोड फैक्टर (पीएलएफ) 2016-17 में साल भर पहले के 63.86 फीसद से घटकर 62.01 फीसद पर आ गया।<sup>13</sup> बिजली क्षेत्र में नियामक कारकों को छोड़ दें तो मौजूदा चुनौतियां वाणिज्यिक और वित्तीय मोर्चे पर हैं जिनके चलते पीएलएफ में गिरावट आई है।

भारत के स्टील क्षेत्र में 2015 में लगने वाला कोयला 66 मिलियन टन रहा, जिसका दो-तिहाई आयातित था। अनुमान है कि स्टील क्षेत्र के लिए कुकिंग कोल की जरूरत 2020 तक बढ़कर 96 एमटी हो जाएगी। इसी तरह सीमेंट क्षेत्र में 2015 में लगने वाले कोयले का करीब दो-तिहाई आयातित था। तीव्र शहरीकरण, सरकार द्वारा इनफ्रास्ट्रक्चर में निवेश में वृद्धि, स्मार्ट सिटी और समर्पित माल गलियारे, मेट्रो रेल परियोजना का विकास, हवाई अड्डों का आधुनिकीकरण और विस्तार- इन सब में सीमेंट की मांग बढ़ेगी। इसके लिए कोयले की जरूरत 2025 तक 72

से 82 एमटी होगी।<sup>14</sup> जाहिर है अर्थव्यवस्था में ईंधन के तौर पर कच्चे माल की तरह काम आने वाले कोयले के महत्व को कम कर के नहीं आंका जा सकता। निजी दोषसिद्धि के अभाव में आर्थिक परिणामों की अनदेखी करते हुए एक साथ 2जी लाइसेंसों के रद्दीकरण और कोयला खदानों के आवंटन को खारिज किए जाने का अर्थव्यवस्था पर तबाही जैसा असर हुआ है।